द्विमासिक पत्रिका

नवंबर 2025-दिसंबर 2025

बेग़मपुरा

सभ्यता का आह्वान

साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य

गौरतलब
सर जॉन ह्यूबर्ट मार्शल

सीधा संवाद
डॉ. एन. सिंह
डॉ. रत्नेश कातुलकर

काव्य संगीति
श्याम निर्मोही
डॉ. राजवीर सिंह 'कमल'

कथा-कहानी मंच
प्रो. तारु एस पवार
डॉ. पहलाद चंद्र दास
चितरंजन भारती
मदन लाल राज

सृजन से संवाद
डॉ. देवी प्रसाद वर्मा
डॉ. नरेंद्र वाल्मीकि

भारत का अन्तर्मन

हमारे बारे में

'बेग़मपुरा: सभ्यता का आह्वान' द्विमासिक पत्रिका है, जिसका इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉफ्रेंस उपक्रम मूलनिवासी सभ्यता संघ द्वारा पीडीएफ प्रारूप में वेबबेस प्रकाशन किया जा रहा है। इसका प्रबंधन, वेब प्रकाशन मई–जून 2025 से किया जा रहा है। यह पत्रिका अंबेडकरवादी विचारधारा से परिचालित है जिसमें तथागत गौतम बुद्ध, रैदास, कबीर, फुले व पेरियार से लेकर मौजूदा मानवतावादी दर्शन शामिल हैं। समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुता की स्थापना हेतु यह पत्रिका मैत्री, प्रेम और सहिष्णुता की भावना को बढ़ाने का कार्य करती है। समाज में उपेक्षित–अधिकारविहीन व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना, संविधान की उद्देशिका के अनुरूप भारतीय समाज का मानस तैयार करना तथा भौतिक बुद्धिवाद की भारतीय सभ्यता का विकास करना इस पत्रिका उद्देश्य है।

पत्रिका के लिए सामग्री भेजते समय ध्यान रखने योग्य बातें

- साहित्यिक रचनाओं के पुनर्पाठ, आलोचना के पूर्व प्रतिमानों की पुनर्व्याख्या करते हुए शोध आलेख, आलोचकों की आलोचना, पुस्तकों को आधार बनाकर लिखें गए लेख, समसामयिक और ऐतिहासिक महत्व की पुस्तकों पर आधारित सूचनापरक लेख, बहुजन साहित्य की धारा जैसे दलित–आदिवासी–पिछड़ा वर्ग के बहुजन नायकों, कलाओं, गीतों और पेशों की जानकारी देते शोधपरक लेख।
- सामग्री की शब्द सीमा 3 से 5 हजार है। सभी प्रकाशकीय सामग्री यूनिकोड में टाइप और अप्रकाशित होनी चाहिए। भाषिक शालीनता का ख्याल रखा जाए।
- प्रकाशित होने वाली सामग्री का चयन संपादक मंडल द्वारा किया जाएगा।
- संपादक को मूल भावना के अनुरूप आंशिक संशोधन/टिप्पणी करने का अधिकार होगा।

बेगमपुरा
सभ्यता का आह्वान
साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य
वर्ष 1 | अंक 4 | नवंबर-दिसंबर 2025 | दिल्ली

परामर्श मंडल

मा. बुद्धशरण हंस, मा. द्वारका भारती, मा. कर्मशील भारती, डॉ. कुसुम वियोगी, मा. विपिन बिहारी

पूर्व समीक्षक

प्रो. (डॉ.) नीलम, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रो. (डॉ.) गोरख निळोबा बनसोडे (शोध निदेशक), हिंदी विभाग सरदार बाबासाहेब माने महाविद्यालय, सातारा, संबद्ध- शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र।

डॉ. प्रभाकर निसर्गंध, एसोसिएट प्रोफेसर, श्रीविजय सिंह यादव कॉलेज, पेठ गांव, कोल्हापुर सबंद्ध -शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र।

डॉ. देवी प्रसाद (आचार्य), सेठ नन्दकिशोर पटवारी राजकीय महाविद्यालय, नीम का थाना, संबद्ध -पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

प्रो. (डॉ.) सनोज कुमार, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

संपादक मंडल

डॉ. नीलिमा बागड़े, डॉ. श्यामसुंदर मिरजकर, डॉ. हरे राम सिंह, डॉ. पूरन सिंह

☎9407352073 ☎9421212352 ☎8544034280 ☎9868846388

प्रधान संपादक

दयाराम ☎9368125292

कार्यकारी संपादक

शीलबोधि ☎9971566918

सहायक कार्यकारी संपादक

डॉ. सरिता ☎9999039617 | मा. राजेंद्र प्रसाद ☎9268798084

प्रकाशन प्रबंधन : इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस, नई दिल्ली

(मूलनिवासी सभ्यता संघ का उपक्रम)

संपादकीय कार्यालय

527-ए, निकट आंबेडकर पार्क, नेहरू कुटिया, कबीर बस्ती, मल्कागंज, दिल्ली-110007

सहयोग राशि रु. 160 वार्षिक

शब्द संयोजन-सुनील कुमार बौद्ध | **आवरण**-महेश कुमार पासवान

'बेगमपुरा: सभ्यता का आह्वान' में प्रकाशन संबंधी निर्णय संपादक मंडल द्वारा सामूहिक रूप से लिए जाते हैं, प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं, जिनसे संपादक मंडल की सहमति होना अनिवार्य नहीं है, संपादक मंडल को प्रकाशित होने वाली सामग्री में संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार होगा, 'बेगमपुरा: सभ्यता का आह्वान' से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है।

'बेगमपुरा: सभ्यता का आह्वान' मूलनिवासी सभ्यता संघ के लिए मू. सुनील कुमार द्वारा ई पत्रिका के रूप में प्रकाशित करते हुए इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस की वेबसाइट पर जारी, संपादक **शीलबोधि**

बेग़मपुरा
सभ्यता का आह्वान
साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य

वर्ष 1 | अंक 4 | नवंबर-दिसंबर 2025 | दिल्ली

संपादकीय

बेग़मपुरा : पराधीनता पाप है जान लियो रे मीत... -**शीलबोधि**☛3
ऐसा चाहू राज मैं—**दयाराम**, प्रधान संपादक☛3

गौरतलब

लुप्त दुनिया का राज : अविद्या के विरुद्ध संघर्ष का सफर
सर जॉन ह्यूबर्ट मार्शल ☛11

सीधा संवाद

संत रैदास:सामाजिक क्रांति के अग्रदूत
डॉ. एन. सिंह☛17
नवयान क्या है?
डॉ. रत्नेश कातुलकर☛26

काव्य संगीति

श्याम निर्मोही की ग़ज़लें☛32
डॉ. राजवीर सिंह 'कमल' की कविताएं☛34

कथा-कहानी मंच

मौन
प्रो. तारु एस पवार☛36
नचनी काकी
डॉ. पहलाद चंद्र दास☛41
नदी किनारे
चितरंजन भारती☛48?
इसका बाप नट था
मदन लाल राज☛53

सृजन से संवाद

तेजपाल सिंह 'तेज' का साहित्य : आर्थिक सरोकारों का दर्शन
डॉ. देवी प्रसाद वर्मा☛55
राजेन्द्र पाल की कविता : सामाजिक यथार्थ और प्रतिरोध की चेतना
डॉ. नरेंद्र वाल्मीकि☛62

संपादकीय

बेग़मपुरा

पराधीनता पाप है जान लियो रे मीत!

शीलबोधि
कार्यकारी संपादक
मो. 9971566918
sheelbodhi@gmail.com

फरवरी की 1 तारीख और पूर्णिमा के दिन हमने एक ऐसे व्यक्ति की जयंती मनाई जिसने पराधीनता को पाप कहकर संबोधित किया, जो अपनी वाणी से तत्कालीन समाज को सचेत कर रहा था कि जो व्यक्ति पराधीनता है, उससे कोई प्रीत नहीं करता। वह कह रहा था कि पराधीन व्यक्ति का कोई दीन नहीं होता, और जिसका दीन नहीं होता, उसे सभी हीन समझते हैं! उस महानतम व्यक्ति को संत रैदास या रविदास कहकर स्मरण किया जाता है, लेकिन जिसने अनेक बार अपनी पहचान जन रैदास के रूप में लोगों के सामने रखी है। जन रैदास की वाणियों में जन-सरोकार की गहनता व्याप्त है। देश में करोड़ों लोगों का समूह, आज भी मौजूद है, जो स्वयं को रैदासी कहकर अपना परिचय देता है, आज भी करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो 'जन रैदास' से प्रभावित हैं, भले ही वे 'जन रैदास' से परिचित नहीं हैं, वे परिचित हैं, 'संत रैदास' से। जन रैदास का चिंतन रोजगार की स्वयत्ता पर टिका है। संत रैदास 'ऐसा चाहूं राज मैं' कहते हुए, वे उस इंसान की आवाज बन रहे थे, जो कमेरा होते हुए भी भूखा था, और 'छोट-बड़े सम बसै' कहकर धन के अंबारों को अपनी उंगली से इंगित कर रहे थे कि इन्हीं बड़े ध न अंबारों की वजह से इंसान भूखा मर रहा है। वे सत्ता से खुले आम नाखुशी जता रहे थे। वे कह रहे थे कि मैं तभी प्रसन्न हो सकता हूं जब छोटे और बड़े लोगों को समान स्तर पर लाया जाएगा।

जन रैदास जैसे 'बेग़मपुरा' शहर बसाने का प्रस्ताव पेश करते हुए नजर आते हैं, उसी तरह से डॉ. आंबेडकर 'राजकीय समाजवाद' का प्रस्ताव पेश करते हैं! जिन कठिनाई का सामना जन रैदास अपने समय में कर रहे थे, वैसी ही कठिनाई डॉ. आंबेडकर के सामने भी थी, आंबेडकर कहते हैं–'यह सच है कि जहां राज्य हस्तक्षेप से विमुख रहता है, वहां जो शेष रहता है, वह है स्वाधीनता, किंतु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती है। एक और प्रश्न का उत्तर दिया जाना शेष है। यह स्वाधीनता किसे और किसके लिए? प्रकटत: यह स्वाध ीनता जमींदारों को लगान बढ़ाने और मजदूरी घटाने की स्वाधीनता है।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ.195) अफसोस वैसी ही कठिनाई भारत की स्वाधीनता के 75 वर्ष बाद कामगारों के सामने है। निजीकरण ने कामगारों के सामने वह स्थिति पैदा कर दी है कि

दुख सहने के बावजूद दुख की गवाही नहीं दे सकते।

राज्य का कल्याणकारी स्वरूप खतरे में है। राज्य की ओर से निजी क्षेत्रों का विस्तार किया जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्रों को सीमित करने का मतलब है कि जनता द्वारा चुनी गई सरकार के प्रभाव को सीमित करना। चुनी हुई सरकार यदि अपने प्रभाव से जनता को शोषण से नहीं बचा पाती है, या नागरिकों के लिए दुखद सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक परिस्थिति पैदा करती है, तो उसे बदला जा सकता है। लोकतंत्र में हर नई सरकार अपनी नीतियों से नागरिकों को शोषणमुक्त परिवेश दे सकती है। सरकार का रवैया देखकर ऐसा लग रहा है कि जैसे उसे निजीकरण का विस्तार करने के लिए ही चुना गया है। सरकार यदि देश के स्वामित्व को बनियों के हाथ में सौंपती है, तब बनिये को कैसे रोका जा सकता है कि देश की धन-दौलत को विदेशों में हस्तातंरित न करे, हमने देखा है कि बनिया लगातार देश की नागरिकता छोड़कर विदेशी नागरिकता ले रहा है, सरकार के सहयोग से जो देश की संपत्ति उसके हाथ में है, उसे लेकर विदेश में बस रहा है।

अब सवाल यह उठता है कि सरकार देश का आर्थिक-बल उन व्यापारियों को क्यों हस्तातंरित कर रहीं है, जो स्वयंहित में देश की नागरिकता छोड़ने के लिए तैयार बैठे हैं और जो सार्वजनिक हित की तिलभर चिंता नहीं करते हैं। निजी क्षेत्र के फैलाव से आजीवका के लिए देश के नागरिक पूंजीपतियों की अधीनता में आ गये हैं। इस संबंध में सन् 1947 में डॉ. आंबेडकर कहते हैं–'अपनी आजीविका पाने के लिए कितनों को अपने संवैधानिक अधिकार छोड़ने पडेंगे? कितने लोगों को प्राइवेट नियोजकों से शासित होना पड़ेगा।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ. 194) भारत के संविधान के अनुसार तो यह निश्चित है कि नागरिकों पर शासन केवल वही लोग कर सकते हैं। जिन्हें उन्होंने अपने ऊपर शासन करने के लिए चुना है। यदि निजी क्षेत्र बढ़ता है तो निजी क्षेत्र जिन पूंजीपतियों के नियंत्रण में है, वे नागरिकों पर शासन करने लगेंगे, जबकि नागरिकों ने अपने ऊपर शासन करने के लिए पूंजीपतियों को नहीं चुना। सार्वजनिक क्षेत्रों में जो काम होता आ रहा था और होता है, उसमें कार्य के घंटे, वेतन, छुट्टी सभी नियमों के अधीन है। साथ ही शोषण करने वाला कितना बड़ा अधिकारी हो, उसके शोषण से बचाव करने के अवसर व नियमों की व्यवस्था है।

सरकार के रूप में जो शासक है, वह सार्वजनिक क्षेत्रों को धीरे-धीरे समेटते हुए निजी क्षेत्र को फैला रहा है। एक निश्चित गति से यह काम हो रहा है। निजी क्षेत्र में रोजगार का स्वरूप संविदा आधारित है, जो स्थायी रोजगार की व्यवस्था नहीं है, बल्कि सीमित अवधि के लिए रोजगार है। निजी क्षेत्र नागरिकों के लिए अनिश्चित रोजगार की जो व्यवस्था है, उसमें नौकरी के चले जाने के अंदेशों से भयभीत 'आज' और 'कल' है। उस नौकरी पर बने रहना नियम या कानून के तहत व्यवस्थित नहीं है, मालिक की इच्छा पर टिका है। सरकार उद्योगों को ज्यादा से ज्यादा अपने नियंत्रण से मुक्त करती जा रही है, इसका मतलब डॉ. आंबेडकर के अनुसार–'जिसे राज्य के नियंत्रण से मुक्ति कहते हैं, वहीं प्राइवेट नियोजक के एकाधिकार का दूसरा नाम है।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ. 195)

सार्वजनिक क्षेत्र में नागरिकों के लिए धर्म, जाति, भाषा या क्षेत्र के आधार पर भेदभाव मुक्त समान अवसर देने के लिए न्यायसंगत व्यवस्था की जाती है। निजी क्षेत्र में नागरिकों को भेदभाव से बचाने के लिए क्या किया जाएगा। डॉ. आंबेडकर कहते हैं–'भारत जैसे देश में जहां अधिसंख्यक या लोग सांप्रदायिक वृत्ति के हैं, यह आशा करना कठिन है कि जो लोग सत्ता में होंगे, वे उन लोगों के साथ समान व्यवहार करेंगे जो उनके संप्रदाय के नहीं है।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ. 191) भारत में 15 फीसदी द्विज-दल के अल्पजन सत्ता में हैं, और 85 फीसदी बहुसंख्यक या बहुजन सत्ता से बाहर हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में हम आपत्ति कर सकते हैं, लेकिन निजी क्षेत्र में सांप्रदायिक वृत्ति के लोगों से समान नागरिक व्यवहार और समान अवसर कैसे पा सकेंगे। संवैधानिक बाध्यता के बावजूद कुछेक लोग अपने सरकारी पदों पर रहकर भी दुस्साहसिक तरीके से अपनी सांप्रदायिक वृत्ति को उजागर करते हैं, हालिया उदाहरण है–बरेली के सिटी मैजिस्ट्रेट अलंकार अग्निहोत्री ने यूजीसी के नए कानून और प्रयागराज के माघ मेले में शंकराचार्य स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद के साथ हुई कथित बदसलूकी के कारण अपने पद से इस्तीफा दे दिया (नभाटा 27012026/1)। सरकार की तरफ से ही कहा गया है कि विश्वविद्यालयों में भेदभाव 110 फीसदी बढ़ गया है। इस तथ्य के प्रति सिटी मैजिस्ट्रेट की कोई सहानुभूति नहीं है, ऐसे में शंकराचार्य के साथ हुए व्यवहार को भी उन्होंने इस्तीफे का आधार बनाया है, इससे उनकी सांप्रदायिक वृत्ति साफ दिखाई देती है। ऐसा व्यक्ति न्याय की कुर्सी

पर बैठकर कैसे न्याय करता होगा। यह अकेला मामला नहीं, खैरलांजी और भंवरी देवी के केस में भी ऐसी ही धार्मिक वृत्तियां शामिल थी। निजी क्षेत्र में रोजगार पर नागरिक की निर्भरता को, जितना ज्यादा, पूंजीपतियों के हवाले किया जाएगा, उतना ही मौलिक अधिकार अपना औचित्य खो देंगे। निजी क्षेत्र में कार्यरत निम्न स्तर के कर्मचारियों का जिस भांति आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण हो रहा है, उसकी वह गवाही भी, इस डर से नहीं दे सकता है, इससे उसका रोजगार छीन लिया जाएगा। आजीविका की असुरक्षा उसे अपने मौलिक अधिकार छोड़ने के लिए मजबूर कर रही है। निजी क्षेत्र में संविदा आधारित आजीविका हासिल करने के लिए चालीस से पचास हजार रुपये की रिश्वत या जमानत राशि दी जाती है, जो वापस नहीं मिलती। हर माह की तनख्वाह से 20-28 फीसदी बिल पास कराने की रिश्वत के रूप में वापस ले लिया जाता है, जिसका कोई सबूत नहीं बनता है। जिसकी जेब काटी जाती है, वह 'हां' भी नहीं भर सकता क्योंकि इससे उसकी आजीविका छिन सकती है। निजी क्षेत्र, वह क्षेत्र है, जहां मौलिक अधिकार स्वत: निरस्त हो जाते हैं, इसके लिए किसी घोषणा की जरूरत नहीं होती। निजीकरण, सीधे तौर पर 85 फीसदी जनता को, द्विज-दल की अनैतिक व अघोषित सत्ता, के अधीन करता है।

सन् 1947 में डॉ. आंबेडकर कह रहे थे, जिसपर आज विशेष गौर करने की जरूरत है–'इस बात को ध्यान में रखते हुए कि व्यस्क मताधिकार के अंतर्गत भी विधान-मंडलों पर एवं सरकारों पर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली लोगों का नियंत्रण रहता है, मध्यक्षेप करने के लिए विधान मंडल से अपील करना कमजोर वर्ग की स्वाधीनता हनन के विरुद्ध एक अत्यंत प्रमुख अपेक्षी सुरक्षा उपाय है।' आज के संदर्भ में विधान मंडल या लोकसभा में अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली लोगों में अडानी या अंबानी जैसे लोगों को माना जा रहा है, जो शायद सरकार से शक्तिशाली हैं, से कमजोर की सुरक्षा के लिए मध्यक्षेप मजबूत विपक्ष है, जिसके प्रबल हस्ताक्षेप से भारत-अमेरिका ट्रेड एग्रीमेंट में अमेरिका की सख्ती काफी हद तक शिथिलता में ढली। कई देशों में जनता के विरोध ने अमेरिका के सख्त रवैये को नरम किया, जैसे–ग्रीनलैंड, कनाडा, फ्रांस आदि। अभी भी वह वक्त नहीं गुजरा है, जिसमें देश को केवल सरकार के भरोसे छोड़ा जा सके। पिछले चुनावों में देश की जनता ने जो मजबूत प्रतिपक्ष खड़ा किया, वह आज देश के काम आया। यह गौर करने लायक बात है कि पिछले चुनावों में प्रमुख विपक्षी पार्टी ने भी द्विज-दल को एक तरफ रखकर 85 फीसदी भारतीय जनता के महत्त्व को स्वीकार किया। उनके मुद्दों को राष्ट्रीय राजनीति में जगह दी। जिस वोट के अधिकार से जनता ने देश को मजबूत विपक्ष दिया है, वही वोट को अधिकार, अल्पजन शक्तिशाली लोगों की, पराधीनता से, बहुसंख्यक या बहुजन को बचाने का संवैधानिक उपचार है। विपक्ष इसका ध्यान रखे।

जिस पार्टी की छवि पूंजीपतियों की पार्टी के रूप में है, गौर है कि उसका रुझान सांप्रदायिक वृत्ति का है, वह जनता के वोट के अधिकार का विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआइआर) कर रही है। इसका परिणाम क्या आ रहा है, नवभारत टाइम्स ने 20 जनवरी 2026 को लिखता है–'दूसरे चरण में जारी 11 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की ड्रॉफ्ट लिस्ट में कुल मिलाकर 3 करोड़ 69 लाख लोगों के नाम कटे हैं। तार्किक विसंगति (logical discrepancies) की श्रेणी में शामिल लोग इससे अलग हैं।' जिस वोट के अधिकार को हमारे पुर्खों ने बड़े बलिदानों से हासिल किया है, वह वोट का अधिकार द्विज-दल द्वारा यूं ही छीन लिया जा रहा है। ऐसे में जनता के वोट के अधिकार की रक्षा यदि न्यायालय नहीं कर रहा है, तो खून की आखिरी बूंद देकर भी अपने वोट के अधिकार की रक्षा करना जनता के हिस्से का काम है। नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2003 को आधार बनाकर केंद्र सरकार एसआईआर करा रही है। जिन 3 करोड 69 लाख लोगों के नाम काटे गए हैं, उनका जनसांख्यिकी विवरण भी सामने आना चाहिए, जो ऐसा हो, जिससे; सामान्य वर्ग, अल्पसंख्यक, एससी, एसटी, ओबीसी और अल्पसंख्यकों के मतदाताओं की संख्या और अनुपात का पता चलता हो।

आजादी के बाद से राजनैतिक सत्ता पर द्विज-दल का कब्जा रहा है, लेकिन पिछले कई दशकों से बहुजनों (एससी, एसटी व ओबीसी) का राजनीतिक हस्तक्षेप बड़ा है, जिससे शक्ति के स्रोतों पर द्विजों की पकड़ ढ़ीली हुई है, द्विज-दल की पकड़ पुन: मजबूत करने के लिए उन लोगों से वोट का अधिकार छीना जा रहा है, जिनकी वजह से द्विज-दल की राजनीतिक शक्ति उनके हाथ से सरकी थी। विशेष गहन पुनरीक्षण से देश की 85 फीसदी जनता की वोट की शक्ति को कमतर किया जा रहा है।

राजनैतिक रूप से भी हम देख रहे

हैं कि द्विज–दल द्वारा संवैधानिक दायित्व व सीमाओं की नैतिकता को तार–तार किया जा रहा है। डॉ. आंबेडकर ने कहा–'संवैधानिक नैतिकता कोई स्वाभाविक भावना नहीं है, इसे विकसित करना पड़ता है।' द्विज–दल संवैधानिक नैतिकता को अपने–आप में आज तक विकसित नहीं कर पाया। केंद्र शक्तिशाली है, इसका मतलब यह नहीं है कि राज्य के लिए संविधान की व्यवस्था का पालन नहीं किया जाएगा। हाल–फिलहाल में केरल के राज्यपाल राजेंद्र विश्वनाथ आलेंकर ने पिनराई सरकार की कैबिनेट से स्वीकृत अभिीाषण को नहीं पढ़ा। इससे पहले तमिलनाडु के राज्यपाल रवींद्र नारायण रवि ने विधानसभा के सालाना सत्र में परंपरागत उद्घाटन भाषण नहीं पढ़ा। 21 जनवरी 2026 को नवभारत टाइम्स लिखता है–'संविधान के मुताबिक, राज्यपाल कैबिनेट की सलाह पर काम करते हैं। वह अपनी निजी राय या असहमति को अभिभाषण के जरिये व्यक्त नहीं कर सकते।' जो लोग शासन के पदों पर संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेकर विराजमान हुए, उनका काम ऐसा लगता है कि संवैधानिक मूल्य को लागू करने से अलग उनके इरादे हैं। जिस तरह से पिछले दिनों केंद्र में सत्तारूढ पार्टी ने राज्य में सरकारें गिराई हैं, उससे ऐसा आभास होने लगा है कि विकल्पविहीन राजनीति की पृष्टभूमि तैयार की जा रही है। यदि दूसरी पार्टियों के वजूद को खत्म या निरस्त कर दिया जाएगा तो चुनाव करने के लिए जिस विकल्प की जरूरत होती है, वह खत्म हो जाएगा। सत्तारूढ लोगों के दबंगपन में धर्म की धमक और धन की खनक अगर समाहित है, तब लोकतांत्रिक मूल्यों को चोट पहुंचाना आसान होगा।

भारत एक बड़ा देश है, यहां पर नागरिकों के बीच सांप्रदायिक व जातीय टकराव की स्थिति केंद्रीय–सत्ता पर आरूढ पार्टी के साथ गैर सरकारी सहयोजित संस्थाओं द्वारा ही उत्पन्न करना और पर्दे के पीछे से संचालन सत्ता में बैठे द्विज–दल के लोगों द्वारा करना, बेहद चिंताजनक स्थिति है। ऐसे में नागरिकों के बीच फैली टकराव की स्थिति का फायदा चीन जैसा देश, जो हमसे हर तरह से कई गुणा शक्तिशाली है, अगर उठाता है, तो यह मानना कि कोई दूसरा देश हमारी मदद करेगा, गलत साबित होगा। अगर कोई मदद मिलेगी भी तो वह किस्तों में होगी और कमजोर साबित होगी। पिछले दिनों कई विकसित देशों पर हुई, शक्तिशाली देशों की कार्यवाही में, हमने यह देख लिया है। नवभारत टाइम्स, दिल्ली की पहले पेज पर 1 सितंबर 2025 को व्हाइट हाउस, अमेरिका के ट्रेड एडवाइजर ने जो कहा, वह छपा, 'ब्राह्मण भारतीय लोगों की कीमत पर मुनाफा कमा रहे हैं।' (Brahmins profiteering off Indian People)। शक्तिशाली देश अपने हस्तक्षेप की भूमिका बनाकर बैठे हैं। अमेरिका अपने सुरक्षा कारणों का बहाना बनाकर ग्रीनलैंड को डेनमार्क के कब्जे से हटाकर अपने कब्जे में लेने की लगातार कोशिश कर रहा है। यूक्रेन के पूर्वी हिस्से यानी डोनबास में स्थित डोनेटस्क और लुहान्स्क में रूसी भाषी लोगों का यूक्रेन सेना द्वारा नरसंहार बताया जा रहा है। यूरोप के कई देश इसे बहाना मान रहे हैं। ऐसे बहाने वर्तमान भारत में सैंकडों की संख्या में मिल जायेंगे, जिसकी ठोस और पुरानी जमीन भी होगी। भारत की सामरिक शक्ति कुछ चुनिंदा सामरिक साजों सामान पर टिकी है, जो यूरोप या अमेरिका जैसे विकसित देश से आयातित है।

असहनीयता की हद तक भारत के लिए अमेरिका का रवैया धमकी भरा रहा है और भारत छप्पन इंच का सीना लिये सुनता रहा। अमेरिका हमारे देश भारत को सख्त आदेश–निर्देश देता नजर आता है। अब बताइये हम अपने देश भारत को सम्प्रभुता सम्पन्न कैसे कह सकते हैं? डेनमार्क हमारे मुकाबले बहुत छोटा देश है, डेनमार्क के प्रधान मंत्री मेटे फ्रेडरिक्सन ने साफ शब्दों में कहा कि संप्रभुता की कीमत पर हम अमेरिका से संबंध नहीं बना सकते। कनाडा के प्रधान मंत्री मार्क कार्नी, ब्राजील के राष्ट्रपति लुइस इनासियो लूला दा सिल्वा ने तीव्र व त्वरित प्रतिक्रिया दी, फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रो ने तो अपनी शक्ति का प्रदर्शन ग्रीनलैंड में अपने सैनिक भेजकर कर भी दिया। हम आशा कर रहे थे भारत के प्रधान मंत्री भी कुछ कहेंगे, लेकिन उनकी प्रतिक्रिया कानों तक नहीं पहुंची। अमेरिका हमें कह रहा था कि भारत अपनी तेल खरीद रूस और ईराक से नहीं करेगा, वेनेजुएला से तेल खरीदेगा। हमारे अधिकारी इस पर नजर रखेंगे। वही खड़े भारतीय राजनयिक इसका साफ शब्दों में जवाब नहीं देते।

अमेरिका नियंत्रण की कार्यवाहियों के बीच भारत में विपक्ष के प्रबल विरोध का प्रभाव नजर आता है कि अमेरिकी वक्तव्य में 'तेल खरीद का वादा' को बदलकर 'तेल खरीद का इरादा' कर देता है, लेकिन भारतीय समझते हैं कि इससे अमेरिका का किसी हद तक इरादा नहीं बदला है। भारत केवल तेल पर ही नहीं, ट्रंप के व्यापार सलाहकार पीटर नवारो की बात पर गौर करें तो एआई पर भी भारत को धमकाते हुए नजर आ रहे हैं कि भारतीयों

के एआई का खर्च हम क्यों उठाये जैसे चैट-जीटीपी। अगर हम झुके या प्रभाव में आए तो हमारी पराधीनता का स्तर खतरनाक होगा, रैदास के शब्दों में पराधीनता का पाप हो रहा होगा।

रूस हमें 20 फीसदी सस्ता तेल तेल दे रहा है, हम महंगा तेल लेने के लिए मजबूर हैं, जबकि रूस के भारी तेल को साफ करने की रिफाइडरी हमारे पास हैं, पर अमेरिकी तेल हल्का है और उसके कच्चे तेल के लिए हमें रिफाइडरी लगानी पड़ेगी। रूस हमारा वह साथी है, जो हर मुश्किल में हमारे साथ खड़ा है। अमेरिका कई बार भारत पर सैन्य कार्यवाही के लिए आगे बढ़ा था, रूस के बीच में आ जाने के कारण वह वापस लौटा था। केवल तत्कालीन लाभ के लिए रूस का दामन छोड़ना अच्छी बात नहीं होगी। रूस विश्व में महाशक्ति है और पूंजीवादी नहीं है, अमेरिका पूंजीवादी शक्ति है, इस तरह से अमेरिका की ही नहीं बल्कि विश्वभर की पूंजीवादी शक्तियां रूस को महाशक्ति के विकल्प के रूप में खत्म करना चाहती होगी, इसलिए हमें अमेरिका के पक्ष में नहीं बल्कि रूस के पक्ष में खड़ा होना जरूरी लग रहा है, जो भरोसेमंद है।

डोनाल्ड ट्रंप के बुरे व्यवहार का शिकार दुनिया के विकासशील देश भी हो रहे हैं। ट्रंप की भाषा और व्यवहार उन्हें नागवार गुजर रहा है। ट्रंप के नेतृत्व में अमेरिका का व्यवहार भरोसे का नहीं रहा, वह यूरोपियन यूनियन के 8 देशों पर टैरिफ नहीं बढ़ाने का वायदा करने के बावजूद 10 फीसदी टैरिफ लगा देता है। यूरोपियन यूनियन इस बात को समझ जाती है, वह भारत के साथ लंबी अवधि का ट्रेड डील करती है। इससे भारत को मजबूती मिलती है। भारत अमेरिका के साथ स्थाई नहीं अंतरिम डील करता है, यह सुखद है, लेकिन इसमें अमेरिका हर महीने बड़े बदलाव कर सकता है, शांति के साथ व्यापार करने की परिस्थिति का संतोषजनक परिणाम अभी नहीं है।

सरकार को अब आगे अपनी व्यापार नीति को ऐसा तैयार करने की जरूरत है कि वह विश्व के विभिन्न देशों के बीच फैली हुई हो। जिससे एक देश के नकारात्मक रवैया से अप्रभावित रहा जा सके।

केवल इतना भर काफी नहीं है। सत्तारूढ पार्टी को हिंदी, हिंदू, हिंदूस्तान की रट के साथ हिंदुत्व के स्थान पर भारतीय-मन बना लेना चाहिए, अन्यथा आंतरिक अशांति का नतीजा किसी हाल ठीक नहीं माना जा सकता है।

कोई भी एक विचारधारा की पार्टी जब कहती है कि 'राष्ट्र सर्वोपरि' है तो इसका मतलब 'भारत देश' नहीं होता है, बल्कि 'हिंदू राष्ट्र' होता है। आम भारतीय को इस भेद को समझना चाहिए। भारत इतना ज्यादा विभिन्नता लिए हुए है कि किसी एक विचारधारा के दबाव में इसकी पहचान भारतीयता के अलावा कुछ और रखने की कोशिश की जाती है, तो गंभीर अशांति की स्थिति पैदा हो जाएगी। ऐसा हो सकता है, जिसका पूर्व अनुमान डॉ. आंबेडकर ने लगा लिया था। देश से ज्यादा विचारधारा को प्रिय समझने वाले भी कभी यदि इस देश की सत्ता की बागडोर संभालेंगे तब के गंभीर परिणामों पर बोलते हुए, उन्होंने संविधान सभा में कहा था, '26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र देश बन गया। उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा? क्या वह अपनी स्वतंत्रता बरकरार रख पाएगा या उसे फिर से खो देगा? यही पहला विचार है जो मेरे मन में आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी स्वतंत्र देश नहीं था। बात यह है कि उसने एक बार अपनी स्वतंत्रता खो दी थी। क्या वह इसे दूसरी बार खो देगा? यही विचार मुझे भविष्य के लिए सबसे ज्यादा चिंतित करता है। मुझे सबसे ज्यादा परेशान करने वाली बात यह है कि भारत ने न केवल एक बार अपनी स्वतंत्रता खोई है, बल्कि उसने इसे अपने ही कुछ लोगों के विश्वासघात और धोखे के कारण खोया है। क्या इतिहास खुद को दोहराएगा? यही विचार मुझे चिंता से भर देता है। यह चिंता इस तथ्य से और भी गहरी हो जाती है कि जाति और धर्म जैसे हमारे पुराने दुश्मनों के अलावा, हमारे सामने कई राजनीतिक दल होंगे जिनके राजनीतिक विचार विविध और एक-दूसरे के विरोधी होंगे। क्या भारतीय देश को अपने धर्म से ऊपर रखेंगे या धर्म को देश से ऊपर रखेंगे? मुझे नहीं पता। लेकिन यह निश्चित है कि यदि दल राष्ट्र से ऊपर विचारधारा को रखते हैं, तो हमारी स्वतंत्रता एक बार फिर खतरे में पड़ जाएगी और शायद हमेशा के लिए खो जाएगी। इस स्थिति से हम सभी को दृढ़तापूर्वक बचाव करना होगा। हमें अपनी खून की आखिरी बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प रखना होगा।'

अब यदि हम महसूस करते हैं कि ऐसी परिस्थिति आ गई है या आ सकती है, तो हमें अपने देश की स्वतंत्रता को बचाने के लिए उतनी गाढी त्याग की भावना की जरूरत होगी, जितनी स्वतंत्रता हासिल करते समय थी। जरूरी नहीं हमारी आजादी को देश से बाहर की कोई शक्ति खत्म करेगी, वह शक्ति देश के अंदर भी हो सकती है, जो राणा प्रताप के खिलाफ अकबर का बल बनकर खड़ी थी। बाकी आपके सोचने के लिए छोड़ता हूं और अभी यही कलम को विराम देता हूं।❑

प्रधान संपादक की कलम से...

ऐसा चाहूं राज मैं

दयाराम
प्रधान संपादक
मो. 9368125292

महापुरुषों की जयंती मनाने का एक सुनिश्चित मकसद होना चाहिए, इसलिए कि कोई भी महापुरुष अपने सुनिश्चित मकसद के लिए ही अपना समाज जीवन जीता है और लोगों के लिए आदर्श बन जाता है। इस वर्ष 2026 में पूरा देश 1 फरवरी को संत रैदास की और 2 फरवरी को बिहार लेनिन बाबू जगदेव प्रसाद की जयंती मना रहा है। दोनों महापुरुषों ने अपने समाज जीवन में सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन का जोखिम भरा लक्ष्य चुना।

परिवर्तन विरोधी ताकतों ने दोनों महापुरुषों की जीवन-लीला समाप्त कर दी। संत रैदास के यशकायी होने के बाद आर्यपुत्रों ने उनके विचारों का ब्राह्मणीकरण करने का प्रयास किया जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। सबसे पहले आर्यब्राह्मणों ने विज्ञापन के तौर पर हनुमान का सीना चीर कर राम-लक्ष्मण का दर्शन कराकर हनुमान को चमत्कारिक पुरुष घोषित कर दिया। फलतः हनुमान पूज्यनीय हो गए। हनुमान के मंदिरों में पूजा अर्चना प्रारम्भ हो गई। हनुमान भक्तों की गाढ़ी कमाई से ब्राह्मणों की जेब भरने लगी। दूसरी तरफ संत रैदास के भक्त भी रैदास जयंती के अवसर पर संत रैदास का सीना चीर कर सात जन्मों का जनेऊ दिखा कर आर्य ब्राह्मणों को चुनौती दी, इस धारणा के साथ कि उनके महापुरुष हनुमान से कहीं अधिक महान थे, जिन्होंने अपना सीना चीर कर सात जन्मों का जनेऊ दिखा दिया। यह दुखद स्थिति हैं कि संत रैदास के मंदिरों में भी आज वही भजन कीर्तन, पूजा अर्चना प्रारम्भ हो गई, जो आज भी जारी है। भारत की संविधान सभा ने जीवन के पूर्व निर्धारित ब्राह्मणवादी मूल्यों को नकारते हुए संविधान की प्रस्तावना में संकल्प लिया कि वे भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और

'जात जात में जात है, ज्यों केलन में पात।
रैदास न मानुष जुड़ सके, जब लो जात न जात।'

राजनैतिक न्याय प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। संविधान लागू होने से कई सौ साल पहले सामाजिक समानता और सामाजिक व आर्थिक न्याय की नसीहत दी। उन्होंने कहा–

'जात जात में जात है,
ज्यों केलन में पात।
रैदास न मानुष जुड़ सके,
जब लो जात न जात।'

संत रैदास ने जाति को झेला था। जाति को जिया था। बाबा साहब डॉ. आंबेडकर संत रैदास की शिक्षाओं से प्रभावित होकर जातिप्रथा के समूल विनाश के लिए 'अछूत कौन?' और 'जाति भेद का उच्छेद' पुस्तक लिखा, जिसको आर्यों के वंशजों ने जप्त कर लिया था, जिसे ललई सिंह यादव ने इलाहाबाद हाईकोर्ट में याचिका दायर कर उसे बहाल कराया। वर्ण और जाति व्यवस्था ही आर्यब्राह्मणों का सनातन धर्म एवं सनातन संस्कृति है। वे अपनी संस्कृति का विनाश कैसे चाहेंगे जिस धर्म एवं संस्कृति ने उन्हें एकाधिकार प्रदान किया।

जाति को अंग्रेजी में कास्ट कहते हैं। कास्ट ने मूलनिवासियों को सबसे अधिक कष्ट दिया। हमारी संविधान सभा ने भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राष्ट्र निर्माण का संकल्प लिया किंतु जहां कास्ट है वहां कोई भी देश राष्ट्र नहीं बन सकता। संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राष्ट्र बनाना तो बहुत दूर की बात है। सबसे हैरतअंगेज बात यह है जातीय भेदभाव के शिकार अछूत और सछूत शूद्र जो बड़े से बड़े संवैधानिक पदों पर रहते हुए भी जातिय भेदभाव के आए दिन शिकार होते रहते हैं, वे भी जयंती समारोहों में भाग लेते हैं। संत रैदास की मूर्ति पर माल्यार्पण करते हैं किंतु अपने ऊपर हो रहे जातीय जुर्म पर 'ऊफ' तक नहीं करते। जाति प्रथा ने कितनों का घर-संसार उजाड़ दिया। जाति प्रथा ने कितनों का सिर मुड़ा, कितनों की चुटिया काटी; फिर भी जाति प्रथा के विनाश के लिए कोई आंदोलन नहीं बल्कि केवल संत रैदास की जय-जयकार वह भी बैंड-बाजे के साथ जूलूस और नाच-गाने ही दिखाई देते हैं।

संत रैदास ने आर्थिक समानता की नसीहत दी और कहा–

'ऐसा चाहूं राज मैं,
जहां मिलै सबन को अन्न।
छोट बड़ों सब सम बसैं,
रैदास रहे प्रसन्न।

रैदास ने सत्य का मार्ग चुना, क्योंकि आर्यों के सांस्कृतिक मूल्य असत्य की बुनियाद पर खड़े थे, यद्यपि मनु ने मनुस्मृति के अध्याय-4/238 में सत्य की नसीहत देकर लोगों को गुमराह करने का प्रयास है कि मनुस्मृति से नैतिकता का प्रादुर्भाव हुआ है। 'सत्य बोलो प्रिय बोलो, असत्य व अप्रिय न बोलो'; किंतु वहीं मनु; मनुस्मृति के अध्याय 8/104 में लिखा है, 'सत्य बोलने से यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का हनन होता है तो असत्य बोलना सत्य से उत्तम है।'

संत रैदास सत्य मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं और उनका मानना है कि सत्य मार्ग का अनुशरण करने पर ही सुख की प्राप्ति होती है। वे कहते हैं–

'रैदास सत्य का आसरा,
सत्य सदा सुख पाये।
सत्य कबहुं नहिं छांड़िये,
जग जाये सो जाये।'

सत्य ही सनातन है। सत्य हमेशा एक जैसा रहता है। सत्य सार्वभौम है। संत रैदास के सत्य के संदेश के अनुशरण से अंधविश्वास पाखंड चमत्कार पुनर्जन्म वर्ण और जाति व्यवस्था जैसी शास्त्र सम्मत धार्मिक धारणाओं का विनाश संभव है। यही संत रैदास के जन्म दिन मनाने के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

बिहार के लेनिन बाबू जगदेव प्रसाद का जन्म 2 फरवरी 1922 में अरवल

'रैदास सत्य का आसरा, सत्य सदा सुख पाये।
सत्य कबहुं नहिं छांड़िये, जग जाये सो जाये।'

'ऐसा चाहूं राज मैं, जहां मिलै सबन को अन्न।
छोट बड़ों सब सम बसैं, रैदास रहे प्रसन्न।

जिले के कुरहारी गांव में हुआ था। सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन के आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाले बाबू जगदेव प्रसाद को आर्यपुत्रों ने 5 सितंबर 1974 को कुर्था ब्लॉक पर मूलनिवासियों का मार्गदर्शन करते समय गोलियों से भून दिया। वे वहीं शहीद हो गए थे। उनके जन्म दिन 2 फरवरी को कुर्था ब्लाक पर प्रतिवर्ष मेला लगता है जिसमें अपार भीड़ होती है और वहां अमर शहीद बाबू जगदेव प्रसाद अमर रहे! के गगन भेदी नारों से पूरा आकाश गूंज उठता है। बाबू जगदेव प्रसाद के सीने में कोई चमत्कारी अलौकिक शक्ति नहीं बल्कि बेबस, लाचार और बेसहारा, मजलूमों और महरूमों का दर्द था। विहार राज्य के सामंतों, साहूकारों, जमींदारों का कहर चरम सीमा पर था। वहां के ऊंची जाति के सामंत और जमींदार मूल निवासियों को गाजर-मूली की तरह काट रहे थे। अछूत और सछूत शूद्रों से वे काम तो लेते थे किंतु उन्हें मजदूरी नहीं। स्वतंत्र भारत में संविधान से अछूतों और पिछड़ों के अंदर सम्मान प्राप्त करने जिज्ञासा ज्यों बलवती होना शुरू हुई, ऊंची जातियों को बर्दाश्त नहीं। ऐसे समय में अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए जगदीश महतो, रामेश्वर अहीर और गोला चमार ने अपने हाथों में बंदूक उठा लिया। अंत में उन्हें आर्यपुत्रों ने गोलियों से भून दिया। गोला चमार को आर्यपुत्रों ने बुरी तरह से मारा और उनकी औरतों ने गोला चमार की पत्नी को पत्र लिखा कि यदि गोला मर जाए तो वे उसके कफन के लिए अपना पेटीकोट भेज देंगी। बाबू जगदेव प्रसाद ने इन सारी घटनाओं को देखा और उनका आकलन कर राजनीतिक आंदोलन में कूद पड़े। पहले संसोपा के साथ राजनीति में सहभाग किया किंतु वहां उन्होंने देखा कि डा. राममनोहर लोहिया ऊपर से समाजवादी और अंदर से गांधीवादी और घोर ब्राह्मणवादी हैं। उन्होंने संसोपा से त्यागपत्र देकर शोषित दल बनाया और शोषित दल की सरकार भी बनाई और वे मंत्री भी रहे। तत्पश्चात वे महामना रामस्वरूप वर्मा के मिलकर वर्मा जी के समाज दल और अपने शोषित दल का विलय कर 7 अगस्त 1972 को शोषित समाज दल की स्थापना की और दोस्त दुश्मन की पहचान के लिए नारा दिया, 'दस का शासन नब्बे पर नहीं चलेगा।', 'सौ में नब्बे शोषित हैं, नब्बे भाग हमारा है।', 'शोषितों का राज शोषितों के द्वारा और शोषितों के लिए होगा।', 'शोषितों ने ललकारा है धन-धरती और राजपाट में नब्बे भाग हमारा है।'

बाबू जगदेव प्रसाद ने मूलनिवासियों को राजनीतिक सत्ता प्रदान करने के लिए उनका आह्वान किया और कहा, 'मेरे बाप दादों से ऊंची जाति वालों ने हलवाही करवाई है परंतु मैं उनकी राजनीतिक हलवाही करने के लिए तैयार नहीं हूं और न हीं अपने लोगों से उनकी हलवाही करने के लिए कहूंगा। मैं एक सुनिश्चित नीति के तहत इन्हीं काले-कलूटे लोगों को तैयार करूंगा और दिल्ली की गद्दी पर उन्हें बैठाऊंगा जो धन-धरती और राज पाठ का फैसला खुद करेंगे। जिस प्रकार कोई कुत्ता मांस की रखवाली नहीं कर सकता उसी प्रकार ये ऊंची जाति के सामंत साहूकार और जमींदार कभी भी शोषितों का हक देने वाले नहीं हैं, इसलिए शोषितों का राज शोषितों द्वारा और शोषितों के लिए होगा।

बाबू जगदेव प्रसाद ने भीष्म प्रतिज्ञा की कि वे राजनीतिक सत्ता को प्राप्त कर जिस प्रकार हमारी बहन बेटियां धूप व बरसात में सवर्ण जातियों के खेतों में काम करती हैं और वे उन्हें उचित मजदूरी नहीं देते, वे उन ऊंची जाति की महिलाओं को महलों से उतार कर खेतों में उनसे धान की रोपनी करवायेंगे। उन्होंने नारा दिया- 'अब की सावन भांदो में गोरी कलैया कादो में।' अर्थ–इस बार सावन भादों के महीने में गोरी गोरी कलाई वाली सवर्ण महिलाओं से कीचड़ में धान की रोपनी करवायेंगे।

बाबू जगदेव प्रसाद की वाणी उन्हें तीर जैसी लगी और उन्होंने सत्ता से सांठगांठ कर 5 सितंबर 1974 को जब वे मूलनिवासियों को संबोधित कर रहे थे, तभी उन पर गोलियां चलाकर उनकी जीवन लीला ही समाप्त कर दी। बाबू जगदेव प्रसाद को बचाने के लिए 12 वर्षीय बच्चा लक्ष्मण चौधरी भी मारा गया था, जिस लक्ष्मण चौधरी के घर बाबू जगदेव प्रसाद कभी-कभार रुकते थे। आज वे हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनका व्यक्तित्व और कृतित्व हमारे लिए प्रेरणा श्रोत है। सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन के आंदोलन में शहीद हुए क्रांति युगपुरुष संत रैदास और बहुजन लेनिन बाबू जगदेव प्रसाद को भावभीनी श्रद्धांजलि! उन्हें शत् शत् नमन!❑

लुप्त दुनिया का राज

अविद्या के विरुद्ध संघर्ष का सफर

सर जॉन ह्यूबर्ट मार्शल

CIE FBA

एक अंग्रेज पुरातत्वविद् थे, जो 1902 से 1928 तक भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक थे।

1

अब तक आमतौर पर यह माना जाता रहा है कि भारत के आर्यों से पहले के लोग अपने आर्य विजेताओं की तुलना में सभ्यता के मामले में बहुत निचले स्तर पर थे; कि वे आर्यों के लिए वैसे ही थे जैसे स्पार्टन्स के लिए हेलोट्स थे, या अपने बीजान्टिन शासकों के लिए स्लाव थे–एक ऐसी गुलाम और निम्न हुई जाति, जिसे आम तौर पर दास या गुलाम के नाम से जाना जाता था। ऋग्वेद की ऋचाओं से उनकी जो तस्वीर सामने आती है, वह काले रंग के, चपटी नाक वाले बर्बर लोगों की थी, जो शारीरिक रूप से गोरे आर्यों से वैसे ही अलग थे, जैसे कि भाषा और धर्म में; ऐसा होने पर भी, यह भी साफ था कि वे मवेशियों के मामले में अमीर रहे होंगे, अच्छे योद्धा थे, और उनके पास कई किले थे जिनमें वे हमलावरों से अपनी रक्षा करते थे। हालांकि, इन 'किलों' को वैदिक विद्वानों ने सिर्फ कभी-कभी शरण लेने की जगह बताया था–यानी, साधारण मिट्टी के टीले, जो शायद लकड़ी की बाड़ या कच्ची पत्थर की दीवारों से घिरे होते थे; क्योंकि, यह देखते हुए कि आर्य लोग खुद अभी भी गांव के स्तर पर थे और उनका समाज दूसरे मामलों में भी उसी तरह से पिछड़ा हुआ था, यह मानना मुश्किल था कि भारत की पुरानी जातियां–यानी, तुच्छ, अछूत दास–पहले से ही अच्छी तरह से बने शहरों या किलों में रह रही होंगी, या दूसरे मामलों में उन्होंने संस्कृति का कोई ऊंचा स्तर हासिल कर लिया होगा। मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और

''ऋग्वेद की ऋचाओं से उनकी (मूलनिवासी) जो तस्वीर सामने आती है, वह काले रंग के, चपटी नाक वाले बर्बर लोगों की थी, जो शारीरिक रूप से गोरे आर्यों से वैसे ही अलग थे, जैसे कि भाषा और धर्म में; ऐसा होने पर भी, यह भी साफ था कि वे मवेशियों के मामले में अमीर रहे होंगे, अच्छे योद्धा थे, और उनके पास कई किले थे जिनमें वे हमलावरों से अपनी रक्षा करते थे।''

''एक पल के लिए भी यह कल्पना नहीं की गई कि पांच हजार साल पहले, जब आर्यों के बारे में सुना भी नहीं गया था, तब पंजाब और सिंध, और शायद भारत के दूसरे हिस्से भी, अपनी एक उन्नत और अनोखी एक जैसी सभ्यता का आनंद ले रहे थे, जो समकालीन मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यता से काफी मिलती-जुलती थी, लेकिन कुछ मामलों में उनसे बेहतर भी थी। फिर भी, हड़प्पा और मोहनजो-दारो में हुई खोजों ने अब इस बात को पक्के तौर पर साबित कर दिया है। ये खोजें ईसा पूर्व चौथी और तीसरी सहस्राब्दी के सिंधु घाटी के लोगों को एक बहुत विकसित कलाचार वाले लोगों के रूप में दिखाती हैं, जिसमें इंडो-आर्यन प्रभाव का कोई निशान नहीं मिलता।''

धार्मिक रूप से, उन्हें अपने जीतने वालों से कमतर माना जाता था, और भारतीय सभ्यता की उपलब्धियों के लिए उन्हें बहुत कम या बिल्कुल भी श्रेय नहीं दिया जाता था। मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और धार्मिक रूप से, उन्हें अपने जीतने वालों से कमतर माना जाता था, और भारतीय सभ्यता की उपलब्धियों के लिए उन्हें बहुत कम या बिल्कुल भी श्रेय नहीं दिया गया। एक पल के लिए भी यह कल्पना नहीं की गई कि पांच हजार साल पहले, जब आर्यों के बारे में सुना भी नहीं गया था, तब पंजाब और सिंध, और शायद भारत के दूसरे हिस्से भी, अपनी एक उन्नत और अनोखी एक जैसी सभ्यता का आनंद ले रहे थे, जो समकालीन मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यता से काफी मिलती-जुलती थी, लेकिन कुछ मामलों में उनसे बेहतर भी थी। फिर भी, हड़प्पा और मोहनजो-दारो में हुई खोजों ने अब इस बात को पक्के तौर पर साबित कर दिया है। ये खोजें ईसा पूर्व चौथी और तीसरी सहस्राब्दी के सिंधु घाटी के लोगों को एक बहुत विकसित कलाचार वाले लोगों के रूप में दिखाती हैं, जिसमें इंडो-आर्यन प्रभाव का कोई निशान नहीं मिलता।

बाकी पश्चिमी एशिया की तरह, सिंधु घाटी का इलाका अभी भी ताम्रपाषाण युग में था - वह युग जिसमें पत्थर के हथियारों और बर्तनों का इस्तेमाल तांबे या कांसे के साथ-साथ किया जाता था। उनका समाज शहरों में बसा हुआ था; उनकी दौलत मुख्य रूप से खेती और व्यापार से आती थी, जो लगता है कि सभी दिशाओं में दूर-दूर तक फैला हुआ था। वे गेहूं और जौ के साथ-साथ खजूर के पेड़ भी उगाते थे। उन्होंने कूबड़ वाले जेबू, भैंस और छोटे सींग वाले बैल के अलावा भेड़, सुअर, कुत्ते, हाथी और ऊंट को पालतू बनाया था; लेकिन बिल्ली और शायद घोड़े के बारे में उन्हें पता नहीं था। ट्रांसपोर्ट के लिए उनके पास पहियों वाली गाड़ियां थीं, जिनमें निस्संदेह बैल जोते जाते थे।

वे कुशल धातु कारीगर हैं, जिनके पास सोना, चांदी और तांबा भरपूर मात्रा में है। सीसा और टिन भी इस्तेमाल में हैं, लेकिन टिन का इस्तेमाल सिर्फ कांसे बनाने में अलॉय के तौर पर होता है। वे कताई और बुनाई में पूरी तरह माहिर हैं। उनके युद्ध और शिकार के हथियार धनुष-बाण, भाला, कुल्हाड़ी, खंजर और गदा हैं। उन्होंने अभी तक तलवार नहीं बनाई थी; और न ही डिफेंसिव बॉडी आर्मर का कोई सबूत मिला है। उनके दूसरे औजारों में, कुल्हाड़ी, हंसिया, आरी, छेनी और रेजर तांबे और कांसे दोनों के बने होते थे: चाकू और कुल्हाड़ी कभी-कभी इन धातुओं के, कभी-कभी चर्ट या दूसरे सख्त पत्थरों के बने होते थे। अनाज पीसने के लिए उनके पास मूसल और चक्की थी लेकिन गोल चक्की नहीं थी।

उनके घरेलू बर्तन आम तौर पर चाक पर बनी मिट्टी के होते हैं और अक्सर उन पर एनकॉस्टिक डिजाइन बने होते हैं; बहुत कम ही वे तांबे, कांसे या चांदी के होते हैं। अमीरों के गहने कीमती धातुओं या तांबे के बने होते हैं, कभी-कभी उन पर सोने की परत चढ़ी होती है, साथ ही फेयेंस, हाथी दांत, कार्नेलियन और दूसरे पत्थरों के भी होते हैं; गरीबों के लिए, वे आमतौर पर सीप या टेरा-कोटा के बने होते हैं। छोटी मूर्तियां और खिलौने, जो बहुत ज्यादा चलन में हैं, टेरा-कोटा के बने होते हैं, और शंख और फेयेंस का इस्तेमाल खुलकर किया जाता है, जैसा कि सुमेर और आम तौर पर पश्चिम में होता है, न केवल पर्सनल गहनों के लिए बल्कि इनले वर्क और दूसरे कामों के लिए भी। सिंधु घाटी के लोग लिखने की कला से भी परिचित थे, और इस काम के लिए एक तरह की लिपि का इस्तेमाल करते थे, जो हालांकि भारत की अपनी थी, लेकिन साफ तौर पर पश्चिमी एशिया और नजदीकी पूर्व की दूसरी समकालीन लिपियों से मिलती-जुलती थी।

2

इस तरह संक्षेप में बताई गई बातों के हिसाब से सिंधु संस्कृति की आम विशेषताएं पश्चिमी एशिया और मिस्र की ताम्र-पाषाण संस्कृतियों से मिलती-जुलती थीं। ऐसा होने पर भी, दूसरे मामलों में, यह सिंध और पंजाब की खास संस्कृति थी और उन इलाकों की उतनी ही खास थी जितनी मेसोपोटामिया की सुमेरियन संस्कृति या नील नदी घाटी की मिस्र की संस्कृति। इस तरह, कुछ खास बातों का जिक्र करें तो, इस समय कपड़ों के लिए कपास का इस्तेमाल सिर्फ भारत तक ही सीमित था और पश्चिमी दुनिया में यह दो या तीन हजार साल बाद तक नहीं फैला था।

फिर से, प्रागैतिहासिक मिस्र या मेसोपोटामिया या पश्चिमी एशिया में कहीं और ऐसा कुछ भी नहीं है जिसकी तुलना मोहनजो-दारो के नागरिकों के अच्छी तरह से बने स्नानघरों और बड़े घरों से की जा सके। उन देशों में, देवताओं के लिए शानदार मंदिर बनाने और राजाओं के महलों और मकबरों पर बहुत सारा पैसा और बुद्धि खर्च की गई थी, लेकिन बाकी लोगों को शायद मिट्टी के छोटे-मोटे घरों से ही संतोष करना पड़ता था। सिंधु घाटी में, तस्वीर उल्टी है और सबसे अच्छी इमारतें वे हैं जो नागरिकों की सुविधा के लिए बनाई गई थीं। वहां मंदिर, महल और मकबरे हो सकते हैं, लेकिन अगर ऐसा है, तो वे या तो अभी तक खोजे नहीं गए हैं या दूसरी इमारतों जैसे ही हैं, इसलिए उन्हें आसानी से पहचाना नहीं जा सकता।

यह सच है कि उर में, मिस्टर वूली ने पक्की ईंटों के मध्यम आकार के घरों का एक समूह खोजा है जो सामान्य नियम का एक खास अपवाद है; लेकिन ये मोहनजो-दारो के सबसे ऊपरी स्तरों की छोटी और कुछ ढीली बनी इमारतों से इतनी मिलती-जुलती हैं, कि इस बात में कोई शक नहीं है कि वे किस प्रभाव में बनाई गई थीं। हालांकि, जो भी हो, हम मोहनजो-दारो के महान स्ना नागार और उसके बड़े और काम के घरों में, उनके हर जगह मौजूद कुओं और बाथरूम और ड्रेनेज के विस्तृत सिस्टम में, यह सबूत देखने का हक रखते हैं कि आम शहर के लोग यहां उस समय की सभ्य दुनिया के दूसरे हिस्सों की तुलना में ज्यादा आराम और विलासिता का आनंद लेते थे।

3

सिंधु घाटी की कला और धर्म भी उतने ही अनोखे हैं और उनकी अपनी एक अलग पहचान है। इस समय के दूसरे देशों में हमें जो कुछ भी पता है, उनमें से कोई भी चीज स्टाइल के मामले में, भेड़, कुत्तों और दूसरे जानवरों के छोटे-छोटे मिट्टी के मॉडल्स या मुहरों पर बनी नक्काशी से मिलती-जुलती नहीं है, जिनमें से सबसे अच्छे - खासकर कूबड़ वाले और छोटे सींगों वाले बैल - अपनी बनावट की चौड़ाई और रेखा और प्लास्टिक रूप के एहसास से पहचाने जाते हैं, जिसे नक्काशी कला में शायद ही कभी कोई पार कर पाया हो; और न ही ग्रीस के क्लासिक युग तक, प्लेट ग और ग्प में दिखाई गई हड़प्पा की दो इंसानी मूर्तियों की बेहतरीन लचीली बनावट का मुकाबला करना संभव होगा।

सिंधु घाटी के लोगों के धर्म में, बेशक, बहुत कुछ ऐसा है जो दूसरे देशों में भी मिल सकता है। यह बात हर प्रागैतिहासिक और ज्यादातर ऐतिहासिक धर्मों पर भी लागू होती है। लेकिन, कुल मिलाकर, उनका धर्म इतना खास तौर पर भारतीय है कि इसे आज भी जीवित हिंदू धर्म से अलग करना मुश्किल है, या कम से कम उसके उस पहलू से जो जीववाद और शिव और मातृ देवी की पूजा से जुड़ा हुआ है - जो आज भी लोकप्रिय पूजा में दो सबसे शक्तिशाली ताकतें हैं।

मोहनजो-दारो और हड़प्पा से हमें जो कई बातें पता चली हैं, उनमें से शायद कोई भी इस खोज से ज्यादा अद्भूत नहीं है कि शैव धर्म का इतिहास ताम्र-पाषाण युग या शायद उससे भी पहले का है, और इस तरह यह दुनिया का सबसे पुराना जीवित धर्म बन जाता है।

4

कई मायनों में, इन खोजों से सामने आई समस्याएं वैसी ही हैं जैसी दो पीढ़ियों पहले ग्रीस और एशिया माइनर में श्लीमैन की खुदाई से सामने आई

''इस मामले में ग्रीस जो समानता दिखाता है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि ग्रीस में भी, भारत की तरह, दक्षिणी और उत्तरी जातियों के सुखद मेल और उनकी अलग-अलग प्रतिभाओं के मिश्रण से ही क्लासिकल सोच और कला का शानदार विकास हुआ; और इसके अलावा, ग्रीस में भी, भारत की तरह, अपनी पुरानी आबादी के प्रति अपनी देन की याद लगभग पूरी तरह से मिटा दी गई थी।''

थीं। जब श्लीमैन ने ट्रॉय के दूसरे शहर में अपना मशहूर सोने का खजाना खोजा, तो वह इस नतीजे पर पहुंच गया कि यह ट्रॉय पर हमले के समय छिपाए गए प्रियम के खजाने का हिस्सा था; और जब बाद में उसे मायसीने की शाही कब्रें मिलीं, तो उसने, बिना किसी वजह के नहीं, यह मान लिया कि उसे एगेमेमनन और उसके परिवार की आरामगाहें मिल गई हैं। उस समय किसी ने भी मिनोस की समुद्री ताकत या आर्यन हेलेनेस के आने से पहले एजियन सागर के तटों पर मौजूद शानदार संस्कृति के बारे में नहीं सोचा था। यह बाद के खोजकर्ताओं के लिए था कि वे यह साबित करें कि एगेमेनन से पहले मायसीने के राजा दूसरी जाति और भाषा के थे; और इलियम का दूसरा शहर ट्रोजन युद्ध से कई सदियों पहले ही बर्बाद हो गया था।

इस मामले में ग्रीस जो समानता दिखाता है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि ग्रीस में भी, भारत की तरह, दक्षिणी और उत्तरी जातियों के सुखद मेल और उनकी अलग-अलग प्रतिभाओं के मिश्रण से ही क्लासिकल सोच और कला का शानदार विकास हुआ; और इसके अलावा, ग्रीस में भी, भारत की तरह, अपनी पुरानी आबादी के प्रति अपनी देन की याद लगभग पूरी तरह से मिटा दी गई थी। पुराने यूनानियों के लिए इलियड और ओडिसी उतनी ही जरूरी थीं, जितना कि आज भी भारतीयों के लिए वेद हैं, जिनमें से कई लोग इन पूजनीय ग्रंथों से परे प्रेरणा और ज्ञान के किसी संभावित स्रोत को देखना भी अधर्म मानते हैं।

5

लेकिन ये नई खोजें सिर्फ भारत ही नहीं, बल्कि पूरे प्राचीन पूर्व की शुरुआती सभ्यता के बारे में मौजूदा विचारों में क्रांति ला सकती हैं। भारत में पुरापाषाण काल के इंसान की भूमिका के महत्व को लंबे समय से पहचाना गया है, और पुरापाषाण और नवपाषाण काल की कलाकृतियों की टाइपोलॉजिकल तुलना से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि असल में भारतीय धरती पर ही बाद वाली चीजें पहले वाली चीजों से विकसित हुई थीं।

यह नजरिया सही हो या नहीं, इसमें कोई शक नहीं कि भारत का उत्तर-पश्चिमी हिस्सा, अपने विशाल, पानी से भरे मैदानों, शिकार के लिए जानवरों की बहुतायत, गर्म लेकिन बदलते मौसम—जो शायद तब अब से ज्यादा अनुकूल था—और नदियों के जाल के साथ, जो प्रचार-प्रसार और मेलजोल के आसान साधन मुहैया कराते थे, उसने शुरुआती समाज की तरक्की के लिए एक खास तौर पर अनुकूल माहौल दिया होगा, चाहे वह समय हो जब इंसान शिकार करता था या बाद में जब उसने खेती और जानवरों को पालना शुरू किया या दूर देशों के साथ व्यापार शुरू किया।

फिलहाल, हमारी रिसर्च हमें चौथी सहस्राब्दी ईसा पूर्व से ज्यादा पीछे नहीं ले जा पाई हैं और इस शानदार सभ्यता को छिपाने वाले पर्दे का सिर्फ एक कोना ही हटा पाई हैं, लेकिन मोहनजो-दारो में भी अभी कई पुराने शहर एक के नीचे एक दबे हुए हैं, जो खुदाई के औजारों की पहुंच से भी ज्यादा गहरे हैं, और हालांकि जमीन के नीचे पानी का लेवल लगातार बढ़ने से इस जगह पर सबसे पुरानी बस्तियों को खोजने की हमारी उम्मीद खत्म हो गई है, लेकिन इसमें शायद ही कोई शक है कि जो कहानी अब तक सामने आई है, उसे दूसरी जगहों पर और भी पीछे तक ले जाया जाएगा, जिनमें से बहुत सारी जगहें सिंध और बलूचिस्तान में खुदाई का इंतजार कर रही हैं।

मोहनजो-दारो और हड़प्पा दोनों जगहों पर एक बात साफ और बिना किसी शक के सामने आती है, वह यह है कि इन दोनों जगहों पर अब तक जो सभ्यता सामने आई है, वह कोई शुरुआती सभ्यता नहीं है, बल्कि भारतीय जमीन पर पहले से ही बहुत पुरानी और स्थापित सभ्यता है, जिसके पीछे हजारों सालों की इंसानी कोशिशें हैं। इसलिए, अब से भारत को पर्शिया, मेसोपोटामिया और मिस्र के साथ उन सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक के रूप में पहचाना जाना चाहिए, जहां समाज की सभ्य बनाने की प्रक्रियाएं शुरू हुई और विकसित हुई।

मेरा यह मतलब नहीं है कि भारत सभ्यता का पालना होने का दावा कर

''इस शानदार सभ्यता को छिपाने वाले पर्दे का सिर्फ एक कोना ही हटा पाई हैं, लेकिन मोहनजो-दारो में भी अभी कई पुराने शहर एक के नीचे एक दबे हुए हैं, जो खुदाई के औजारों की पहुंच से भी ज्यादा गहरे हैं, और हालांकि जमीन के नीचे पानी का लेवल लगातार बढ़ने से इस जगह पर सबसे पुरानी बस्तियों को खोजने की हमारी उम्मीद खत्म हो गई है।''

सकता है; और न ही मुझे लगता है कि अभी मौजूद सबूतों के आधार पर किसी एक देश के लिए ऐसा दावा किया जा सकता है। मेरे विचार से, ताम्र-पाषाण और उसके बाद के युगों की सभ्यता कई देशों की मिली-जुली कोशिशों का नतीजा थी, जिनमें से हर देश ने ज्ञान के कॉमन भंडार में कुछ न कुछ योगदान दिया।

नवपाषाण युग से, या शायद पुरापाषाण युग से ही, सबसे ज़्यादा आबादी वाले इलाके निस्संदेह दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका की बड़ी नदी घाटियां थीं, जहां ठंड कभी ज़्यादा नहीं होती थी, जहां इंसान को खाना और पानी आसानी से मिल जाता था, जहां चरागाह अच्छे थे, सिंचाई मुमकिन थी, और प्राकृतिक जलमार्गों के रास्ते कम्युनिकेशन आसान था।

इनमें से हर नदी घाटी में, नील और यूफ्रेट्स नदियों के किनारे, साथ ही कारून, हेलमंद या सिंधु नदियों के किनारों पर, यह माना जा सकता है कि इंसान को विकास के बराबर मौके मिले होंगे, और यह सोचना स्वाभाविक है कि इन सभी इलाकों में एक ही समय में और निस्संदेह कई दूसरे इलाकों में भी किसी न किसी दिशा में तरक्की हो रही थी।

अगर इस नजरिए को, जो यकीनन सबसे ज़्यादा तर्कसंगत है, मान लिया जाए, अगर हम अफ्रीकी-एशियाई क्षेत्र की इस फैली हुई सभ्यता को अलग-अलग केंद्रों में केंद्रित और अलग-अलग लोगों की आपसी कोशिशों से विकसित हुआ मानें, तो हम बेहतर ढंग से समझ पाएंगे कि अपनी सामान्य

''मोहनजो-दारो और हड़प्पा दोनों जगहों पर एक बात साफ और बिना किसी शक के सामने आती है, वह यह है कि इन दोनों जगहों पर अब तक जो सभ्यता सामने आई है, वह कोई शुरुआती सभ्यता नहीं है, बल्कि भारतीय जमीन पर पहले से ही बहुत पुरानी और स्थापित सभ्यता है, जिसके पीछे हजारों सालों की इंसानी कोशिशें हैं।''

समानता के बावजूद, इसमें कई बहुत अलग-अलग शाखाएं कैसे शामिल थीं, जिनमें से हर एक अपने-अपने क्षेत्र में अपनी स्थानीय और व्यक्तिगत पहचान बनाए रखने में सक्षम थी।

6

इन दो वॉल्यूम में बताए गए मोहनजो-दारो में खुदाई का काम 1922 और 1927 के बीच पांच सर्दियों के मौसम में किया गया था, और किए गए ज़्यादातर काम की शुरुआती रिपोर्ट पहले ही हमारी डिपार्टमेंटल रिपोर्ट्स में छप चुकी हैं। हालांकि, ये शुरुआती रिपोर्टें जरूरी तौर पर छोटी थीं और हर मौसम के आखिर में मजबूरी में तैयार की गई थीं, इससे पहले कि खुदाई करने वालों को खुद अपने मटीरियल को पूरी तरह से समझने का समय मिल पाता।

इसी वजह से और इन खोजों से दुनिया भर में जो दिलचस्पी जागी है, उसे देखते हुए मुझे लगा कि इन पहले पांच सालों के नतीजों को एक साथ लाना और उनका जितना हो सके उतना पूरा रिकॉर्ड पब्लिश करना सही रहेगा, लेकिन पाठक को यह समझना चाहिए कि ये वॉल्यूम सिर्फ शुरुआती जानकारी देते हैं, पक्के नहीं हैं। चीजों के हिसाब से ऐसा ही होना था।

हम सभ्यता का एक बिल्कुल नया अध्याय खोलने में लगे हुए हैं। हमारा काम अभी शुरू ही हुआ है। लगभग रोज नए सबूत सामने आ रहे हैं, और इसलिए हमारा नजरिया धीरे-धीरे बदल रहा है। ऐसी स्थितियों में किसी भी अंतिम नतीजे पर पहुंचना मुमकिन नहीं है। हमारे तथ्यों और आंकड़ों के साथ—और ये इन किताबों की रीढ़ हैं—हम मजबूत जमीन पर हैं। उन पर समय की कसौटी पर खरा उतरने का भरोसा किया जा सकता है। लेकिन तथ्य और आंकड़े ही सब कुछ नहीं होते। उन्हें प्रभावी ढंग से समझने की जरूरत है, और यह तभी प्रभावी ढंग से किया जा सकता है जब इस दौर के बारे में हमारा ज्ञान अभी के मुकाबले कहीं ज़्यादा पूरा हो। मैं यह भी कहना चाहूंगा कि यह काम, अभी या भविष्य में, केवल वही विशेषज्ञ कर सकते हैं जिन्हें इस विषय की पूरी जानकारी हो।

मैं यहां इस बात पर जोर दिए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि मोहनजो-दारो और हड़प्पा की जो पुरानी चीजें पहले ही हमारे डिपार्टमेंटल रिपोर्ट्स के पन्नों में आ चुकी हैं, उनके बारे में बहुत सारी बेवकूफी भरी बातें लिखी गई हैं, जो उपयोगी रिसर्च के रास्ते में रुकावट के अलावा और कुछ नहीं हो सकतीं। मेरी यही चिंता थी कि मोहनजो-दारो की खोज और इन कीमती चीजों के पब्लिकेशन में किसी भी ऐसी चीज की कमी न रहे जो एक्सपर्ट जानकारी दे सके, और इसी वजह से मैंने तीन साल पहले अपने काम के

लिए मेसोपोटामिया की आर्कियोलॉजी के एक स्पेशलिस्ट की मदद लेने का फैसला किया, जिसका हमारी सिंधु घाटी सभ्यता से गहरा संबंध साफ हो गया था।

खुशकिस्मती से मुझे मिस्टर अर्नेस्ट मैके की सेवाएं मिल गईं, जो किश और जेमडेट नस्र में अपनी खुदाई के लिए जाने जाते हैं, और मिस्र और फिलिस्तीन में भी उन्हें आर्कियोलॉजी का लंबा अनुभव था। इन किताबों के मामले में मैं इस अधिकारी का बहुत ज्यादा एहसानमंद हूं; क्योंकि उन्हें न सिर्फ ज्यादातर छोटी-मोटी पुरानी चीजों का, बल्कि बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक इमारतों के अवशेषों का भी एक बड़ा हिस्सा डिस्क्राइब करने का काम मिला, जो जाहिर है बहुत मेहनत वाला और मुश्किल काम था।

इस पब्लिकेशन में दूसरे सहयोगी, जिन्हें मैं इस मौके पर धन्यवाद देना चाहता हूं, वे हैं: मिस्टर हरग्रीव्स, भारत में आर्कियोलॉजी के एक्टिंग डायरेक्टर जनरल, और उनके डिप्टी फॉर एक्सप्लोरेशन, राय बहादुर दया राम साहनी, जिन्होंने क्रमश: 1925-26 और 1926-27 के सीजन में किए गए खुदाई के काम का विस्तृत विवरण दिया है; मिस्टर सिडनी स्मिथ, मेसोपोटामिया में एंटीक्विटीज के इंस्पेक्टर, और ब्रिटिश म्यूजियम के मिस्टर सी. जे. गैड, जिन्होंने मिलकर प्लेट्स ब्रप-ब्रग्प में दिखाए गए विस्तृत साइन-मैनुअल को संकलित किया है और सिंधु लिपि की यांत्रिक प्रकृति और कुछ बाहरी विशेषताओं पर महत्वपूर्ण नोट्स दिए हैं; ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर एस. लैंगडन, जिन्होंने लेखन के उसी उलझन भरे विषय पर एक और महत्वपूर्ण अध्याय दिया है; मिस्टर एम. सना उल्लाह, भारत में आर्कियोलॉजिकल केमिस्ट, जिन्होंने अधिकांश रासायनिक विश्लेषण किए हैं और अध्याय ग्ग्ट में, तांबे और उसकी मिश्र धातुओं के स्रोतों और धातु विज्ञान के बारे में बताया है; मिस्टर ए. एस. हेमी, जो हाल ही में लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज के प्रिंसिपल थे, जिन्होंने वजन और माप की प्रणालियों की जांच की है; कर्नल आर. बी. सेवेल, जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के डायरेक्टर, और उनके सहयोगी डॉ. बी. एस. गुहा, जिन्होंने जानवरों के अवशेषों की गहन जांच की है; और सर एडविन पास्को, जियोलॉजिकल सर्वे के डायरेक्टर, और उसी विभाग के मिस्टर ए. आई. कूलसन, जिन्होंने धातुओं और खनिजों के संबंध में यही सेवा प्रदान की है।

7

मैं इंडियन सेंट्रल कॉटन कमेटी के श्री ए. जे. टर्नर और टेक्नोलॉजिकल लेबोरेटरी में उनके सहयोगी श्री ए. एन. गुलाटी का भी बहुत आभारी हूं, जिन्होंने मोहनजो-दारो में कपास के इस्तेमाल के संबंध में सावधानीपूर्वक रिसर्च की; सर ऑरेल स्टीन का, जिन्होंने मुझे बलूचिस्तान से संबंधित सामग्री दी, जिससे टेक्स्ट के आखिर में दिया गया नक्शा बनाया गया है; भारत में मौसम विज्ञान विभाग के डायरेक्टर जनरल डॉ. सी. डब्ल्यू. बी. नॉर्मैंड का, जिन्होंने जलवायु परिवर्तन के सवाल पर तुरंत मदद की; डॉ. एच. आर. हॉल का, जो हमेशा एक उदार और मददगार दोस्त रहे हैं, साथ ही ब्रिटिश म्यूजियम के ट्रस्टियों का भी, जिन्होंने अपने दो अधिकारियों को म्यूजियम में उनके आधिकारिक कर्तव्यों के हिस्से के रूप में साइन-मैनुअल तैयार करने की अनुमति दी; ब्रिटिश म्यूजियम के ही डॉ. एच. जे. प्लेंडरलेथ का, जिन्होंने परिशिष्ट प्प में ग्लेज्ड मिट्टी के बर्तनों पर अपना जानकारीपूर्ण नोट दिया; और कैम्ब्रिज के क्वींस कॉलेज के डॉ. ए. बी. कुक का, जिन्होंने सिंधु धर्म पर मेरे अध्याय के संबंध में कई मूल्यवान सुझाव दिए।

तीन और विद्वान जिनके नामों को मैं नजरअंदाज नहीं कर सकता, वे हैं स्वर्गीय श्री आर. डी. बनर्जी, जिन्हें मोहनजो-दारो की खोज का श्रेय जाता है, या कम से कम उसकी बहुत पुरानी सभ्यता का, और खुदाई के काम में उनके तुरंत बाद आए श्री एम. एस. वत्स और के. एन. दीक्षित। इन अधिकारियों में से हर एक ने जो बहुमूल्य काम किया है, वह पहले से ही काफी मशहूर है और इन किताबों के पन्नों से यह और भी साफ हो जाएगा, लेकिन शायद मेरे अलावा कोई भी उन मुश्किलों और परेशानियों को पूरी तरह से नहीं समझ सकता, जिनका सामना उन्हें मोहनजो-दारो में पहले तीन सीजन में करना पड़ा, या जिस हिम्मत और जोश के साथ उन्होंने उन पर काबू पाया।

आखिर में, और ऊपर लिखी बातों के बाद, जो एक साल से भी पहले लिखी गई थीं, मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं ट्रिनिटी कॉलेज, ऑक्सफोर्ड के श्री टी. के. पेनिमैन का कितना आभारी हूं, जिन्होंने इन वॉल्यूम के इंडेक्स को बनाने में बहुत मेहनत की है, और पब्लिशर श्री आर्थर प्रोबस्टेन का भी, जिन्होंने इस काम में लगातार दिलचस्पी दिखाई और बहुत सारी प्रैक्टिकल मदद भी की।□

सीधा संवाद

संत रैदास: सामाजिक क्रांति के अग्रदूत

डॉ. एन. सिंह
प्रख्यात बहुजन चिंतक
और
ख्यातिप्राप्त अकेडमिशियन
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
मोबाइल 9412355707,
Whatsapp- 9528382209
ईमेल drnsingh 27@gmail-com
वेबसाइट www. drnsingh.com

हिंदी साहित्य के मध्यकाल के पूर्वार्द्ध भाग को 'भक्तिकाल' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह मध्यकालीन भारत की दीनता, धार्मिक, अंध-विश्वासों एवं सामाजिक विकृतियों का काल था। विदेशी आक्रांता शासक, भारतवासियों पर जुल्म ढा रहे थे तो भारत के लोग भी धार्मिक रूढ़ियों के आधार पर और अधिक बंटते जा रहे थे। जिसके कारण भारत का सामाजिक ढांचा पूर्णत: अस्त-व्यस्त हो गया था। कुल मिलाकर यह धार्मिक राजनीतिक और सामाजिक पतन का काल था। ऐसे ही समय में दीन-हीन भारत की दुखी जनता को सामाजिक स्वास्थ्य के लिए समता की संजीवनी पिलाने के लिए भारतभूमि पर संत रैदास का आर्विभाव हुआ था–

चौदह सौ तैंतीस की
माघ सुदी प्रदास।
दुखियों के कल्याण हित
प्रकटे श्री रैदास।।

माघ की पूर्णिमा को ही समस्त भारत में रैदास संप्रदाय के लोग बड़ी धूम-धाम से संत रैदास की जयंती मनाते हैं। इसका आधार गुरु गोविंद सिंह कालीन संत करमदास की यही उक्ति है। इसके अनुसार उनका जन्म सम्वत् 1433 वि. की माघ पूर्णिमा को हुआ था। जबकि 'अगस्त्य-संहिता' के अनुसार इनकी जन्मतिथि 'चैत्र सुदि द्वितीया शुक्रवार' है। रैदास काव्य का अध्ययन करने पर अन्त: और बाह्य कोई ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, इसका उल्लेख कबीर ने अपनी वाणी में किया है–

साधुन में रैदास संत हैं,
सुपच ऋषि सो मानिया।
हिंदू तुर्क दुई दीन बने हैं,
कछु नहीं पहिचानिया।।

संत रैदास ने भी कबीर को 'गुरु समान कबीर बड़ भ्राता' कहकर सम्मान दिया है। इससे यह तथ्य प्रमाणित होता है कि संत रैदास और संत कबीर दोनों एक ही समय में विद्यमान थे।

इस आधार पर संत रैदास का समय निश्चित करना सरल हो जाता है। संत कबीर का जन्म सम्वत् 1456 अद्यावधि सर्वमान्य है। कोई जन्मतिथि निश्चित करना यदि सर्वमान्य भले ही न हो लेकिन यह सर्वमान्य है कि दिल्ली सल्तनत के अंतिम दौर और मुगलकाल शुरू होने की दहलीज तक

का काल संत रैदास की मौजूदगी का काल था। इस प्रकार संत रैदास के जन्मकाल को कबीर के जन्म सम्वत् से दो-चार वर्ष के अंतर से निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि रैदास ने स्वयं कबीर को 'बड़ा' स्वीकार किया है। अत: संत रैदास का जन्म काल सम्वत् 1456 से सं. 1467 के बीच ही तर्कसंगत बैठता है। जबकि 'शोध पत्रिका' में प्रकाशित लेख 'संत रैदास का समय' में श्री वेद प्रकाश गर्ग ने रैदास का जीवनकाल सं. 1415 से लेकर सम्वत् 1525 के आसपास माना है।

संत करमदास की उक्ति को यदि सही तिथि के रूप में स्वीकार किया जाता है तो उस समय दिल्ली में फिरोज शाह तुगलक (1315-1388 ई.)का शासन था। जहां फिरोज के शासन का अंत होता है वहां संत रैदास 12 वर्ष के हैं। और तुगलक वंश के अंत के समय (1413 ई.) उनकी आयु 37 वर्ष थी। सैयद वंश के शासन का अंत होने तक संत रैदास की आयु 74 वर्ष की हो गई थी। लोदी वंश में संत रैदास ने 1526 तक 75 से 150 वर्ष तक आयु गुजारी थी। लोधी वंश के अंत के कुछ समय बाद ही संत रैदास का परिनिर्वाण 1527 ई. (विक्रम संवत 1584) में हो गया था।

कुछ शोध विवरणों में हम संत रैदास का जन्म 'मांडूर' नामक स्थान पर हुआ माना जाता था। अब मांडूर का नाम 'मडुवाडीह' हो गया है। जो मुगलसराय स्टेशन से डेढ़-दो मील की दूरी पर ग्रांट ट्रंक रोड पर स्थित है। 'रैदास रामायण' में इसका उल्लेख मिलता है।

कासी ढिंग मांडूर सथाना,
शूद्र वरण करत गुजराना।
मांडूर नगर लीन ओतारा,
रैदास सुभ नाम हमारा।।

'रैदास वाणी' में भी उनके जन्म-स्थान का 'बनारस' के आस-पास होने का उल्लेख है।-

'मेरी जाति कुटवांढला ढोर ढुंबता।
नित ही बनारसी आस पास।।

ज्ञात होगा कि हाल-फिलहाल में मडुवाडीह रेलवे स्टेशन का नाम बदलकर बनारस कर दिया गया है।

संत रैदास अपने अनेक पदों में जाति की अवधारणा का विरोध करते हुए मिलते हैं, तो कुछ पदों में हम पाते हैं कि वे अपनी जाति बता रहे हैं। मन में आयेगा कि जाति का विरोधी, अपनी पहचान को जाति के आधार पर क्यों बताएंगा। जाति ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा है, जो पूरे समाज पर लागू है, लेकिन रैदास भले ही जाति की अवधारणा का विरोध करते हैं, ब्राह्मणवादी व्यवस्था में अपनी जगह और स्थिति भी बताते हैं। इसलिए उनके इस पद से उनकी जाति का भी पता चल जाता है, ऊपर के पद में वे अपनी जाति 'कुटवांढला' बताते हैं, वहीं उनकी वाणी में एक स्थान पर लिखा मिलता है-'मेरी जाति विख्यात चमारा'। खैर रैदास के चिंतन में जाति कोई मूल्य नहीं रखती इसलिए जाति को उनके साथ जोड़कर संत रैदास को पहचानने पर हमें भी जोर नहीं देना चाहिए।

संत रैदास की मां का नाम करमाबाई तथा पिता का नाम राघवदास था। जो चमड़े से जूते बनाने का काम करते थे। संत रैदास भी जीवन भर अपना पैतृक पेशा ही करते रहे। वे किसी को यदि नंगे पांव देख लेते थे तो अपनी दिनभर की मेहनत से बनाया हुआ जूता उठाकर सादर भेंट कर देते थे। तंग आकर उनके पिता ने उन्हें घर से अलग कर दिया। ये घर के पीछे झोंपड़ी डालकर अपनी साधक पत्नी लोना के साथ रहने लगे तथा पुराने जूते गांठकर अपने परिवार का पालन-पोषण करने लगे। साधु संगति के प्रति इनका अनुराग फिर भी कम नहीं हुआ। इनके परिवार को विपन्नता में दिन काटने पड़े, जिससे लोग इनका उपहास भी करते थे *'दारिद देखी सब कोई हँसे ऐसी दशा हमारी।'* लेकिन अध्यात्म मार्ग के पथिक को इन कष्टों की चिंता कहां? परिणाम स्वरूप इनकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी जिसके कारण काशी के विद्वान, पंडित उनके विरोधी हो गये। किंतु अंततोगत्वा सभी ने उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया था।

गरीब निवाज गुसैया
मेरे माथे तिलक धरै।
नीचहि ऊँच करे मेरा
गोविन्द काहु ते न डरै।।

जातिविहीन अवधारणा के संत रैदास के शिष्यों में सभी जाति व संप्रदाय के लोग थे। झाली रानी (झालावाड़ के राजा की पुत्री रत्न कुँवरी) तथा मीरा उनकी शिष्या थी। मीरा ने इस तथ्य को अपने एक पद में स्पष्ट स्वीकार किया है।

गुरु मिल्या रैदास जी
दीन्ही ग्यान की गुटकी।

संत रैदास का अधिकांश समय काशी में ही व्यतीत हुआ। किंतु फिर भी वे देशभर में भ्रमण करते रहे। जीवन के अंतिम समय में उनका शरीर वृद्धावस्था के कारण इतना जर्जर हो चुका था कि वे देश-देशांतर के भ्रमण लायक नहीं रहे।

अब मैं हारयो रे भाई।
हलन चलन ते थकित भई देह
लोकन वेद बड़ाई।
थकित भयो नाचन और गायन है,
थाकी पूजा सेवा।।

चित्तौड में ही संत रैदास का शरीरांत सम्वत् 1584 में हुआ इस संबंध में एक उक्ति प्रचलित है–

पंद्रह सौ चऊ अशी,
भई चित्तौड़ मंह भीर।
जर-जर देह कंचन भई,
रवि रवि मिल्यो शरीर।।

यहां पर कुंभ श्याम मंदिर के पास रैदास की छतरी बनवाई गई, जिसमें उनके चरण-चिह्न आज भी अंकित हैं। अनंतदास वैष्णव ने लिखा है–

हरिसागर में बूँद समानी,
कोड न जाने कहाँ समानी।

भारतीय संस्कृति अंतविरोधों का विचित्र समन्वय है। यहां एक ओर तो किसी अछूत को पूजा, उपासना और पठन-पाठन का अधिकार नहीं दिया जाता था, वहीं दूसरी ओर यदि कोई अछूत सिद्धि प्राप्त कर ले तो उसे उदारता से स्वीकार भी कर लिया जाता रहा। मध्यकालीन भारत में संत कवि रैदास इन्हीं अन्तर्विरोधों का एक सशक्त उदाहरण है। क्रान्तिकारी, समाज सुधारक, दार्शनिक, भक्त और कवि जैसी विशेषताओं से विभूषित उनके व्यक्तित्व को एक जाति विशेष तक सीमित कर उसकी परिधि को छोटा ही किया गया जबकि वे जयदेव, नामदेव, गुरु नानक, कबीर आदि महान संतों की अविरल परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थे, इसलिए उनके सर्जनात्मक व्यक्तित्व का मूल्यांकन इसी परिप्रेक्ष्य में रखकर किया जाना चाहिये।

संत रैदास के चालीस पद तो 'गुरु ग्रंथ साहब' में संकलित हैं तथा अन्य पांडुलिपियों से दो सौ के लगभग पद तथा ढाई सौ से अधिक 'साषियां' जो दो पंक्तियों के समतुकान्त छंदों में दोहों की तरह हैं। उनके परवर्ती कुछ लेखकों ने उन्हें 'साखियां' भी कहा है, प्राप्त हो चुके हैं। अब तक उनकी इस सामग्री के अतिरिक्त एक और ग्रन्थ 'प्रहलाद चरित' का भी पता लगा है। विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है और वे सोचने लगे हैं कि संत रैदास के काव्य का अध्ययन किये बिना सम्पूर्ण संत काव्य का अध्ययन अधूरा है। संत रैदास काव्य के मर्मज्ञ अध्येता डा. बी. पी. शर्मा (भूतपूर्व एसोशिएट प्रोफेसर, यू.जी.सी., पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़) ने 7 मई 1979 के अपने पत्र में मुझे लिखा था- 'वास्तव में संत रैदास पांडुलिपियों की परतों में दबे रहे, इस चमार को किसी ने देखा ही नहीं, अन्यथा यह चमार विचित्र भक्त था। 130 वर्ष जूझता रहा जीवन संघर्ष में। आखिर 'सकल राजधानी को अगवानी में लेकर' भारत सम्राट 'राणा सांगा' ने चित्तौड़ दुर्ग की 1800 फुट ऊँची चौहद्दी पर उनका स्वागत किया था।' हालांकि इस पत्र की भाषा अतिशयोक्ति पूर्ण है, क्योंकि राणा सांगा कभी भारत सम्राट नहीं रहे। फिर भी इस पत्र में संत रैदास का महत्त्व ध्वनित होता है, वहीं उनकी व्यापक उपेक्षा की ओर भी संकेत दृष्टिगोचर होता है। उनकी उपेक्षा का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि इस संत शिरोमणि का काव्य शताब्दियों तक यूं ही उपेक्षित पड़ा रहा और अब भी उसे वह सम्मान प्राप्त नहीं है , जिसकी वे काबिलियत रखते थे।

मध्यकालीन भारत अंधविश्वासों के अंधेरें में सांस ले रहा था, कुछ बेबुनियाद रूढ़ियों ने उसमें और डर पैदा कर दिया था। रैदास की ख्याति सर्वत्र फैल जाने के उपरान्त भी सवर्ण हिंदू उन्हें अछूत ही समझते थे। इसका उल्लेख उनके काव्य में यूं मिलता है।

रैदास तूं कांवचि फलि
तुझे न छिवे कोय।

उन्होंने अपने हृदय के इस दर्द को अपनी वाणी में बड़ी सहजता से व्यक्त किया है–

हम अपराधी नीच घर जन्में,
कुटुम्ब लोग करे हाँसी रे।

दूसरे लोगों की बात और थी खुद उनके कुटुम्ब लोग ही उनका उपहास करने लगे थे, ऐसी परिस्थितियां किसी भी व्यक्ति को अन्तर्मुखी कर सकती है और निराशा से भर सकती है। तमाम तरह की उपेक्षा को सहकर भी संत रैदास सर्जनशीलता से अपनी मुश्किलों को सकारात्मक दिशा में मोड देते। वे सामाजिक रूढ़ियों पर पुनर्चिन्तन करते और तब जाकर कहीं वे रूढ मान्यताएं प्रहार करते थे। संत रैदास ने तत्कालीन रूढियों के प्रति विद्रोह किया, इसलिए उन्हें सामाजिक क्रांति का अग्रदूत कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

ऐसे समय में सजग साहित्यकार का जो दायित्व है, उसका संत रैदास ने बड़ी सहजता से निर्वाह किया। सर्वप्रथम उन्होंने मनुष्यों के बीच बनाये गए हिंदू-मुसलमान के भेद को खारिज कर दिया, उन्होंने कहा कि इंसान केवल इंसान है, हिंदू या तुर्क कहने से उसमें कोई भेद पैदा नहीं होता, इस तरह से उन्होंने समाज में एकता स्थापित करने का प्रयास किया क्योंकि बाहरी आक्रान्ताओं के साथ आई अवधारणाओं ने यहाँ के मूलनिवासियों में हिंदू और तुर्क का भेद पैदा करके सभी को

परेशान किया हुआ था, इसलिए उन्होंने पहले सैद्धांतिक लकीर को ही मिटाना उचित समझा जिससे भावात्मक एकता स्थापित हो सके। यह तभी सम्भव था जब राम और रहीम के मनुष्य होने के यथार्थ को समझा जाये और स्वीकार किया जाए तथा वेद और कुरान को लोग वैसा ही समझे जैसी वे हैं

कृष्णा-करीम, राम-हरि-राघव,
जब लग एक न पेषा।
वेद-कतेब-कुरान-पुरानन
सहज एक नहीं वेषां।।

कृष्णा-करीम, राम-हरि-राघव, ये किसी ईश्वरीय शक्ति के नाम नहीं हैं, जब तक आप इन्हें एक जैसे मनुष्य के रूप में नहीं परख पाते हैं तब तक आप नहीं समझ सकते कि वेद, कुरान, पुराण, इनमें से किसी भी किताब का सहज वेश (रूप) नहीं है।

मंदिर मस्जिद एक है,
इन मंह अन्तर नाहि।
रैदास राम रहमान का,
झगडऊ कोऊ नाहि।।

मंदिर और मस्जिद दोनों ईंट-पत्थरों के बनें हैं, दोनों ही उपासना की जगह है, दोनों में एक प्रभारी नियुक्त है जिसे पुरोहित या मुल्ला कहा जाता है। मंदिर और मस्जिद में कोई अंतर नहीं होने पर भी, ये मंदिर और मस्जिद ही एक मनुष्य को राम कहकर और दूसरे मनुष्य को रहमान कहकर भेद करा रहे हैं, और झगड़ा करा रहे हैं। रैदास कहते है कि जब दोनों मनुष्य है, तो इनके बीच कोई भेद हो ही नहीं सकता तो झगड़ा क्या होगा।

***

रैदास हमारा राम जोई,
सोई है रहमान।
काबा कासी जानि याहि,
दोऊ एक समान।।

किसी मनुष्य का नाम बदल जाने से मनुष्य नहीं बदल जाता, इसलिए हमारे तो जो राम है, वही रहमान है यानी दोनों इंसान ही हैं। काबा और कासी जब उपासना की जगह है, तो दोनों में अंतर कैसे हो सकता है। अपनी बात को और सहज और सरल तरीके से बतलाने के लिए रैदास कहते हैं कि

रैदास कंगन और कनक माहि,
जिमी अन्तर कछु नाहिं।
तैसऊ ही अन्तर नहीं,
हिन्दुअन तुरकन माहीं।।

जैसे सोना और सोने से बना कंगन अलग-अलग चीज नहीं हैं, कंगन बन जाने के बाद भी सोना, सोना ही है। वैसे ही किसी को हिंदू और किसी को तुर्क कह देने पर भी वे मनुष्य ही रहेंगे।

सच्ची बात यदि अभी भी समझ में नहीं आ रही है तो आगे संत रैदास कहते हैं कि

हिंदू तुरक नहीं कछु भेदा,
सभ मंह एक रक्त और मांसा।
दोऊ एकह दूजा कोऊ नांही,
पेख्यो सोध रैदासा।।

अर्थात हिंदू और तुर्क के रूप में पहचाने जाने वाले इंसानों में कोई भेद नहीं है, सभी में एक जैसा रक्त और एक जैसा मांस है। दोनों एक ही हैं, दूजा या अलग कुछ नहीं, मैं रैदास शोध-परखकर अपनी बात कह रहा हूं।

रैदास सच्चाई से अवगत है इसलिए उनके लिए इंसान बस इंसान है, उनके लिए मुसलमान इंसान की तरह दोस्त है, इस वजह से हिंदू दुश्मन नहीं बन जाता, हिंदू भी इंसान है, उससे भी उतनी ही प्रीत है।

मुसलमान सौ दोस्ती,
हिन्दुअन सौ कर प्रीत।

रैदास के यहां राम द्वैत की वैसी शक्ति है, जहां दो या दो से ज्यादा दृश्य या अदृश्य चीजें आपस में जुड़कर किसी तीसरी चीज को उत्पन्न करती हैं, वही शक्ति संसार की नियंता है, उसे ही निर्गुण राम कहते हैं। इसी निर्गुण की जोत से जो अप्रकाशित है, वह प्रकाशित होता है, जिसका वजूद नहीं है, उसका वजूद बनता है। इंसान भी ऐसी ही द्वैत (दो) की जोति से उत्पन्न हुआ है। जब सब अपने जैसे ही उत्पन्न हो रहे है, तो परायापन या दूजापन कहां से उत्पन्न हो सकता है, जब सब अपने जैसे ही हैं तो सभी अपने मीत हैं।

रैदास' जोति सभ राम की,
सभ हैं अपने मीत।।

इस प्रकार संत रैदास ने तत्कालीन परिस्थितियों में समाज को उचित दिशा

सर्वप्रथम उन्होंने मनुष्यों के बीच बनाये गए हिंदू-मुसलमान के भेद को खारिज कर दिया, उन्होंने कहा कि इंसान केवल इंसान है, हिंदू या तुर्क कहने से उसमें कोई भेद पैदा नहीं होता, इस तरह से उन्होंने समाज में एकता स्थापित करने का प्रयास किया क्योंकि बाहरी आक्रान्ताओं के साथ आई अवधरणाओं ने यहाँ के मूलनिवासियों में हिंदू और तुर्क का भेद पैदा करके सभी को परेशान किया हुआ था, इसलिए उन्होंने पहले सैद्धांतिक लकीर को ही मिटाना उचित समझा जिससे भावात्मक एकता स्थापित हो सके।

देने के लिए धार्मिक अंधविश्वासों का भंडाफोड़ करके समस्त मनुष्यों को भेदभाव भूलकर आपस में मिल-जुलकर इस देश की उन्नति के लिए कार्य करने का उपदेश दिया। उनका यह उपदेश तत्कालीन परिस्थितियों में जितना आवश्यक था, सामयिक संदर्भों में भी इतना ही प्रासंगिक हैं क्योंकि भौतिक दृष्टि से इतनी वैज्ञानिक उन्नति कर लेने के बावजूद भी धार्मिक अंधविश्वास पूर्णत: नष्ट नहीं हो पाये हैं। आज भी मंदिर और मस्जिद को लेकर राम और रहमान का सांप्रदायिक दंगा निरन्तर हो रहा है। ऐसी स्थिति में संत रैदास के काव्य से सबक लेना आवश्यक है।

इस समय की समस्त प्रचलित रूढ़ियों पर संत रैदास ने दृष्टिपात किया है वर्ण-व्यवस्था को हिंदू धर्म का कोढ़ माना जाता है। वर्ण-व्यवस्था का अभिशाप चौथे वर्ण अर्थात् 'शूद्र' को ही सहना पड़ा। प्रारम्भ में वर्ण जन्मत: नहीं कर्मत: निर्धारित किये जाते थे। किंतु मध्य काल तक आते-आते इस स्वस्थ मान्यता ने रूढ रूप ले लिया। चूँकि संत रैदास को ब्राह्मणों ने शूद्र वर्ण से सम्बद्ध किया था। इसी कारण उन्हें उच्च वर्ण का उपहास तो सहना पड़ा ही, कभी-कभी प्रतिशोध का शिकार भी होना पड़ा। इसलिए उन्हें इन सड़ी-गली मान्यताओं के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ी। अत: पहले तो उन्होंने ब्राह्मणों की बनाई हुई अविद्यापूर्ण दार्शनिक व्यूह रचना की मान्यताओं का सैद्धान्तिक स्तर पर विरोध सम्यक दर्शन के सिद्धांतों से किया। उन्होंने सम्यक दृष्टि से कहा–

रैदास एक बूँद सौ,
सब ही भयो वित्थार।
मूरिख हैं जो करत हैं
वरन अवरन विचार।।

अर्थात रैदास कहते हैं कि पिंता के शरीर से निकल कर जो एक बूंद मां के शरीर में गई उसी से तो मेरा-तुम्हारा विस्तार हुआ है, अब कोई मुर्ख ही होगा जो एक इंसान को वर्ण का कहेगा और दूसरे इंसान को अवर्ण कहेगा। अब आगे संत रैदास कहते हैं कि

रैदास एक ही नूर ते
निमि, उपज्यों संसार।
ऊँच-नीच किहि विध भये,
ब्राह्मण और चमार।।

अर्थात जब वह परिस्थिति एक ही है, जिसमें दो चीजों के परस्पर मिलने से किसी अतिरिक्त चीज की निमित्ति होती है, उपजती है, ऐसे ही ये संसार उपजा है, फिर बताओं जब इस विधि से तो सभी समान रूप से उपज रहे है, तो ब्राह्मण और चमार किस विधि से ऊंच-नीच उपज सकते हैं।

इसके बाद उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी कि कोई भी व्यक्ति जन्म के कारण ऊँच-नीच नहीं हो सकता, क्योंकि मनोवांछित जन्म लेना तो किसी के भी हाथ की बात नहीं है। हाँ, व्यक्ति के इहि-लौकिक कर्म अवश्य ही उसके श्रेष्ठत्व अथवा निकृष्टत्व को निर्धारित करते हैं।

रैदास जन्म के कारणै,
होत न कोई नीच।
नर को नीच करि डारि हे,
औछे करम की कीच।।

इस आधार पर भारतीय समाज को विभिन्न जातियों में बाँटकर और अधिक कमजोर करने की कोशिश की गई। संत रैदास की पूर्ण मान्यता है कि जब तक इस देश में जाति-प्रथा जैसी अविद्यापूर्ण दृष्टि रहती है, तब तक सामाजिक दुखों का अंत नहीं हो सकता। तथागत बुद्ध ने भी कहा था कि अविद्या ही सभी दुखों की जननी है। अविद्यापूर्ण ज्ञान के ही कारण एक इंसान अपने जैसे इंसान को अपना जैसा इंसान नहीं देख पा रहा है। एक जैसे इंसान होने के बावजूद जाति की अविद्यपूर्ण दृष्टि के कारण साथ-साथ रहने वाले दो इंसान अलगाय रहते हैं, उनके बीच का अलगाव खत्म नहीं होता है, अविद्यापूर्ण जाति के कारण उत्पन्न अलगाव का उत्कृष्ट उदाहरण संत रैदास केले के तनै के रूप में देते हैं–

जात-जात में जात है,
ज्यों केलन के पात।
'रैदास' न मानुष जुड़ सके,
ज्यों लौ जात न जात।।

अर्थात जैसे केले के तनै में चिपके छिलके एक साथ एक ही जगह पर रहने के बाद भी एक-दूसरे से अलगाय रहते है, इससे केले का तना सभी पेड़ों में सबसे कमजोर साबित होता है, वैसे ही जाति-प्रथा के कारण एक ही भारत देश में रहने वाले मनुष्य एकमेव होकर क्यों नहीं रहते, उससे कमजोर साबित होता है। बाहरी आक्रांताओं से भारत के हारने का कारण जाति के कारण उत्पन्न नागरिकों में अलगाव की व्यवस्था ही रही है।

भारत के लिए यह दुखद रहा है कि यहां पर जाति ही व्यक्ति का सामाजिक स्तर निर्धारित करती रही है। उसे ऊंच और नीच मानने और मनवाने पर बाध्य करती रही है। संत रैदास इसीलिए ऐसी जाति प्रथा को जो व्यक्ति-व्यक्ति को जोड़ती नहीं तोड़ती है 'रोग' मानते हैं–

जात पात के फेर महि,
उरझि रहइ सब लोग ।
मानुषता को खात हई,
रैदास जात कर रोग।।

जाति ने एक इंसान के नीचे दूसरे इंसान को रख दिया और प्रत्येक व्यक्ति को बता दिया कि वह तुमसे नीचा है और तुम उससे ऊंचा हो। ऊंचा होने के कारण तुम्हारे अधिकार ज्यादा है और नीचा होने के कारण नीच के अधिकार कम है। नीच देखे गए इंसान को उत्पादन में कम हिस्सा देकर खुद को ऊंच देखने वाला इंसान जाति-प्रथा की मिथ्या दृष्टि में उलझ गया। अपने को ऊंच दृष्टि से देखने पर लाभ यह मिल रहा था कि हर ऊंच व्यक्ति अपनी मेहनत और कुशलता से ज्यादा उत्पादन में हिस्सा लेने को आतूर हो गया, और नीचे के व्यक्ति की मेहनत और कुशलता का न्यायसंगत हिस्सा भी उसे नहीं देता बेशक वह भूख से मर जाए। अविद्यापूर्ण दृष्टि की जाति प्रथा की अवधारणा मनुष्य की मनुष्यता खा गई। जाति की इस मिथ्या दृष्टि ने नीचे पायदान पर जन्म लेने वाली संतानों को ऊपर के पायदान पर आने से सख्ती से रोक दिया। इस तरह समाज में नीचे के पायदान पर खड़ा हर व्यक्ति अपने से ऊपर वाले की मिथ्या दृष्टि में पीढ़ी-दर-पीढ़ी नीच हो गया। मिथ्या दृष्टि के कारण जन्म से ही जाति के नाम पर नीचे ढकेल दिये लोगों का प्रतिनिधि स्वर बनकर संत रैदास आज भी कह रहे हैं कि

जन्म जात मत पूछिए,
का जात और पात।
'रैदास' पूत सम प्रभु के,
कोई नहि जात कुजात।।

अर्थात जाति जन्म से निश्चित कर दी गई है, उसे मुझसे क्यों पूछ रहे हो, अगर पूछ रहे हो तो यह भी बताओं कि जात का पात क्या है अर्थात किस कारण से जाति को माना जाए और उसका पालन किया जाए, जिस परम शक्ति से तुम उत्पन्न हुए हो, उसी शक्ति से मैं भी उत्पन्न हुआ हूं तो कौन जात है और कौन कुजात है। आगे मानो वे किसी ब्राह्मण से संवाद में कर्म कौशल के महत्व को बताते हुए कह रहे है कि

जन्म जात कूँ छाँड़ि करि,
करनी जात परधान।
इहयों वेद को धरम है,
करै रैदास बखान।।

अर्थात जन्म के आधार पर जो जाति तुमने तय कर दी है, उसकी क्या बात करते हो, उसे छोड़ों, अगर कोई जाति यहां प्रधान है, तो वह कर्मगारों की है। क्योंकि कर्मगारों के कारण जरूरतों की पूर्ति होती है। वेदों का धर्म इससे अलग नहीं, इसके बाद संत रैदास ने वेदों की व्याख्या करके बताया। दयानंद सरस्वती की दृष्टि में भी वेद पंडों द्वारा स्थापित रूप से अलग थे।

संत रैदास कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सभी को बनाने वाला वही द्वैत है यानी दो के बीच सहयोगात्मक संबंध, वहीं एक स्थिति है जो सबकी 'सिरजनहार' है। दो के बीच सहयोग की एक ही स्थिति का विस्तार यह सारा संसार है। उसी से किसी व्यक्ति आत्म या आपा (आत्मा) बनता है और उसी से सृष्टि का परमात्म (परमात्मा) बनता है। एक व्यक्ति का आत्म अनेक तत्वों के बीच परस्पर सहयोगपूर्ण क्रिया का प्रतिफल होता है, वैसे ही अनेक आत्म के द्वारा की जाने वाली परस्पर क्रियाओं से परम-आत्म (परमात्मा) बनता है। आत्म (आत्मा) उस परम-आत्म का अंश है और परम-आत्म अनेक आत्म का समुच्चय है। इस तरह से पदार्थ ही वह मूल माटी है, जिससे आत्म और परमात्म का सर्जन होता है, चार पदार्थ (जल, थल, वायु और ताप) के बीच होने वाली क्रिया ही ब्रह्म है, उसी का सब जगह (सगल) प्रसार (पसार) हो रहा है–

एक माटी के सभ भांडे
सभ का एकै सिरजनहार।
'रैदास' व्यापै एकै घट भीतर,
सभ कौ एकै घड़े कुम्हार।।
'रैदास' एकै ब्रह्म का
होई रहयों सगल पसार।
एके माटी सब घट सरजे,
एकै सभ कूं सरजनहार।।

इस प्रकार रैदास ने 'वर्ण व्यवस्था' और 'जाति व्यवस्था' की मिथ्या दृष्टि का विरोध किया। डा. बृजमोहन शर्मा के इस कथन में सत्य ही ध्वनित हुआ है– *'छुआछूत एवं ऊँच-नीच को ही नहीं बल्कि गुरु जी ने मांसाहार अनैतिकता के अतिरिक्त धनलिप्सा, दुराचरण जैसे तत्वों को असामाजिक बतलाकर एक लंबी क्रांति का सूत्रपात किया। धार्मिक, संकीर्णताओं, भेदभावों को भी उन्होंने सर्वथा त्याज्य बतलाया है, क्योंकि यह भेदभाव ही 'वसुधैव*

भारतीय समाज को विभिन्न जातियों में बाँटकर और अधिक कमजोर करने की कोशिश की गयी। संत रैदास की पूर्ण मान्यता है कि जब तक इस देश में जाति-प्रथा जैसी अविद्यापूर्ण दृष्टि रहती है, तब तक सामाजिक दुखों का अंत नहीं हो सकता। तथागत बुद्ध ने भी कहा था कि अविद्या ही सभी दुखों की जननी है।

कुटुम्बकम्' का विरोधी है।'' इसी ने तो आदमी को आदमी से दूर किया है। मानवीयता के लोकोपकारी सिद्धांतों के प्रसार एवं प्रचारार्थ मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि पूजा स्थानों तथा काबा, काशी, मक्का, मथुरा आदि तीर्थस्थानों का भी कोई विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि द्वैत की प्रभुता का वास हर जगह है–

का मथुरा का द्वारिका
का कासी हरिद्वार।
रैदास खोजा दिल अपना,
तऊ मिलिया दिलदार।।

जिस शक्ति की खोज में भ्रमित इंसान मथुरा, द्वारका, कासी या हरिद्वार जाता है, वह शक्ति तो हर व्यक्ति के तन व मन में समाहित है। उस द्वैत की प्रभुता को खोजने के लिए अपने अंदर झांकने की जरूरत है। खुद को सहयोगपूर्ण रवैये के साथ किसी से जोड़ने या जुड़ना ही तो वह शक्ति है, जिसे ब्रह्म भी कहा जा सकता है। ब्रह्म कोई एक शक्ति नहीं है, बल्कि विभिन्न पदार्थों की शक्ति का पुंज है। यही पुंज का कोई एक अंश इंसान है, कोई दूसरा अंश पेड़ है, कोई तीसरा अंश जानवर को जिंदा रखता है, इस तरह इसका न आदि है और न अंत है। इस शक्ति पुंज का किसी आकार के अंदर किसी भी प्रकार से कोई स्थायित्व नहीं है, यह बस एक बहाव है, जैसे जल-प्रवाहित नदी का होता है। जिसे इस पल हाथ टेक कर नदी कहा जाता है, वह पानी तो उसी पल आगे निकल गया और जिसे अब हम नदी कह रहे है, वह पीछे से आगे आया हुआ पानी है। नदी के प्रवाह में कुछ भी स्थायी नहीं है। वैसी किसी काया में कोई स्थायित्व नहीं है, केवल-भर द्वैत समूहों के पुंज का अंश प्रवाहमान है, यही संत रैदास का दिलदार है, इसे ही वे साहिब कहते हैं जो घट में व्याप्त है।

समस्त मिथ्याचारों तथा आडम्बरों का संत रैदास ने डटकर विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि *'मन ही पूजा मन ही धूप, मन ही सहजै सकल सरूप।'* वस्तुतः मन की शुद्धता ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने समस्त बुराइयों पर एक-एक कर सशक्त चोट की। समाज सुधारक के नाते उन्होंने समाज की सही नब्ज को पकड़ा। जैसे तत्कालीन राजे-महाराजे रात-दिन शराब के नशे में डूबे रहते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि 'यथा राजा तथा प्रजा'। निम्न आय वर्ग के लोगों में भी यह व्यसन फैल गया जो इनके पतन का बहुत बड़ा कारण सिद्ध हुआ। संत रैदास ने इसे रोकने के लिए देखिए कैसी मीठी सीख दी है–

'रैदास मदुरा का पीजिये,
जो चढै-चढ़े उतराय।
नाव महारस पीजिये,
जो चढ़े नाहिं उतराय।।

इसी प्रकार मांसाहार भी व्यसनों में एक था। यह पापाचार एवं आत्मिक अशुद्धता का मूल कारण है। संत रैदास ने इसके मूल 'जीव हत्या' पर चोट की तथा 'जीव हत्या' को पाप बताकर 'अहिंसा' के श्रमण सिद्धांत का प्रचार किया

रैदास जीव मत मारहिं
इक साहिब सब मांहि।
सब मांहि एकउ आतमा
दूसरह कोउ नांहि।।

***

दया भाव हिरदै नहीं,
भखहिं पराया मास।
ते नर नरक मंह जाइहिं,
सत भाषै रैदास।।

उन्होंने जीव हत्या कर नमाज पढ़ने की मनोवृति को दूषित करार दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि किसी जीव को मारकर कभी भी खुदा की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस गाय और बकरी को खुदा ने पोषण के लिए बनाया है भला उसे मारकर ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है–

रैदास जउ पोषण हेत,
गऊ बकरी नित खाय।
पढई नमाजे रात-दिन
तबहु भिस्त न पाय।।
रैदास जीव कूँ मारि कर,
कैसो मिलहि खुदाय।
पीर पैगम्बर ओलिया,
कोउ न कहइ समुझाय।।

ईश्वरवादियों में जो स्थान 'पूजा', 'प्रार्थना', 'नमाज' और 'आराधना' का है, समणों में वही स्थान इंद्रियों के संयम के लिए 'साधना' का है। वह व्यक्ति जो अपने मन से इंद्रियों को साध लेता है, उसके लिए सुख और दुख की भावनाएं एक जैसी हो जाती हैं, इसी अवस्था को निर्वाण कहा जाता है, महायानियों ने इसे 'अमरित पद' कहा है, नीचे दी गई पंक्तियों में संत रैदास के ज्ञान के स्कूल का पता चलता है, और इस स्कूल द्वारा तय किया गया जीवन लक्ष्य यानी अमरित पद की प्राप्ति लक्षित होता है–

जो बस राखे इन्द्रियां,
सुख दुख समझि समान।
सोऊ अमरित पद पायगो,
कही रैदास बखान।।

इच्छाओं को भोग से दूर रखने पर ही व्यक्ति का मन शांत रहता है, मन की शांति ही संतोष का कारण है, और संतोष व्यक्ति का सबसे बड़ा धन है।

धन संचय करने से सुख नहीं मिलता, सुख मिलता है धन को सत्कर्म में खर्च करने से–

सच्चा सुख सत्त धरम मंहि,
धन संचय सुख नांहि।
धन संचय दुख खान है,
रैदास समझि मन मांहि।।

जरूरत से अधिक धन का संचय वास्तव में अन्य की जरूरत के धन का अपहरण करना है। जिससे अनेक लोगों के जीवन में दुख की खान खुद जाती है। समाज में विषमताओं का जन्म हो जाता है। वस्तुत: व्यक्ति के व्यक्तित्व से जब तक विषमतायें समाप्त नहीं हो जाती, वह श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्य को अपने जीवन में पाँच विकारो (काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ) से सदैव दूर रहना चाहिये। जिस व्यक्ति ने इन पंच विकारों को त्याग दिया वह व्यक्ति महान हो जाता है। संत रैदास सत्य, संतोष और सदाचार को ही जीवन का आधार मानते हैं–

सत संतोष अरू सदाचार,
जीवन का आधार।
'रैदास' भये नर देवते,
जिन तियागे पंच विकार।।

सत संगति का जीवन में बड़ा महत्त्व है आचार्य शुक्ल 'कुसंगति के ज्वर' को सबसे भयानक मानते हैं। दुराचारी व्यक्ति की संगति व्यक्ति को पथ भ्रष्ट कर देती है संत रैदास ऐसे व्यक्ति से जो सत्य नहीं बोलता, विश्वासघात करता है, भूलकर भी बात न करने की सलाह देते हैं–

जो नर सत्य न भाषहिं
अरू करहिं विश्वासघात।
तिन्ह हुं सौ कबहुं भुलिहिं,
रैदास न कीजिये बात।।

इसके विपरीत वे सज्जन (साधु) व्यक्ति के गुणों का विस्तार से वर्णन करते हैं कि साधु को सांसारिक मोह-माया में लिप्त नहीं होना चाहिये, उसे निवैर होकर समस्त अवगुणों को छोड़कर परम सत्ता को जानना व समझना चाहिये, साधु में अहं का भाव न हो, वह मिथ्या भाषी न हो, उसे परोपकारी होना चाहिये, उसे क्षमाशील तथा तृष्णा रहित होना चाहिये। संत रैदास द्वारा श्रेष्ठ मनुष्य के जितने गुणों का उल्लेख किया गया है, नि:सन्देह यह समस्त गुण सम्पूर्ण मानवता के आभूषण हैं–

रैदास सोई साधु भलो,
जऊ जग मंहि लिपत न होय।
गोविन्द सों रांचा रहइ
अरू जानहि नहीं कोय।
रैदास सोइ साधु भलो,
जउ मन अभिमान न लाय।
ओगुन छोड़हि गुन गहेय
सिमरई गोविन्द राय
रैदास सोई साधु भलो,
जउ अपनह आपु न जताय।
सतवादी, सांचा रहइ,
मनन हरि चरनन मंह लाय।
रैदास सोई साधु भलो,
जो पर उपकार कमाय।
जइसोई कहहिं तहसोई करहि,
आपा नाहिं जताय।।

इन गुणों से विभूषित मानव श्रेष्ठ की संगति करने से ही व्यक्ति का मन निर्मल हो सकता है तथा पाप-मुक्ति संभव है–

रैदास सोई साधु भलो,
निर्मल जाके बैन।
जिहि करि दरस और परस
सों मन उपजहिं सुख-चैन।

कोई ऊंचे कुल में पैदा होकर महान हो जाए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है किंतु कोई साधारण आय वर्ग तथा सामाजिक दृष्टि से हेय समझे जाने वाले कुल में उत्पन्न होकर महान हो जाए, यह अपने-आप में आश्चर्य की बात है। संत रैदास इस तथ्य का एक जीवंत उदाहरण है। उनकी इस महानता का एक ही रहस्य है और वह है उनकी 'श्रम-साधना' यानी श्रम में आस्था का होना। निष्क्रियता व्यक्ति को हर स्तर पर तोड़ देती है, इसलिए संत रैदास व्यक्ति को सदैव नेक नियत से कर्मशील रहने का उपदेश देते हैं–

रैदास स्रम करि खाइए
जौ लौ पार बसाय।
नेक कमाई जो करहूँ
कबहुं न निहफल जाय।
स्रम को ईसर जानिके,
जऊ पूजाहिं दिन-रैन।
रैदास तिन्हाहि संसार में,
सदा मिलिहिं सुख-चैन।।

उनकी ये कर्मनिष्ठा, कभी भी उनकी पूजा, उपासना में बाधक नहीं हो पाई। जो व्यक्ति हाथ से काम करता हुआ जिव्हा से उनका नाम लेता रहे, ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति को ईश्वर घर आकर मिलते हैं–

जिव्हा सो ओंकार जप,
हत्थन सौ कर कार।
राम मिलिहिं घर आईकर,
कहि रैदास विचार।।

काम करते हुए भी व्यक्ति के मन में अभिमान न आने पर तथा वह काम करते रहते हुए भी किसी प्रकार के फल की इच्छा न रखे। इससे बड़ा त्याग और क्या हो सकता है। जीवन का कर्ता भाव कुछ अलग चीज नहीं है बल्कि जीव और कर्म मूलत: एक ही भाव हैं, इसलिए संत रैदास का कहना है–

सौ बरस लौ जगत मंहि,

जीवत रहि करू काम।
रैदास करम ही धरम है,
करम करहु निहकाम।।
धरम हेतहिं कीजिये,
सौ बरस लौ कार।
रैदास करमहि धरम है,
फल माहि नहीं अधिकार।।

धर्म उन प्रवृत्तियों को कहते हैं, जो हमारे कर्म से जुड़ी होती है। प्राचीन काल से हमारे देश भारत में मां, पिता, पुत्र, पुत्री, राजा, अध्यापक, सैनिक आदि के कर्म को ही धर्म कहा गया है, जैसे राजा का धर्म, सैनिक का धर्म, मां का धर्म व पुत्र का धर्म। कर्म दायित्व है, पुरस्कार नहीं होता है। कर्म का पारितोषिक देना या पुरस्कार देना किसी दूसरे व्यक्ति का धर्म है। कर्म करते समय इस निष्काम कर्मयोगी संत ने, गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए जीवन भर काम किया और 'परम पद' प्राप्त किया। डा. शिव प्रसाद गोयल ने ठीक ही लिखा है कि आधुनिक युग में संत रैदास की विचारधारा का अपना विशिष्ट महत्त्व है। लौकिक दृष्टि से जब बड़े से लेकर छोटे तक सब प्राणी कर्त्तव्य विमुख हो रहे हैं तब लोक-परलोक की निन्दा स्तुति से दूर अपनी साधक पत्नी के साथ मामूली-सी झोपड़ी में बैठे हुए जूते सी-सीकर जीविका चलाने वाले मस्त फकीर और तन्मय भक्त रैदास का कर्त्तव्य परायण होकर गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए आत्मोद्धार के लिए-भक्ति पथ अपनाने का सन्देश किसे नहीं मोह लेता?'

भारत की पराधीनता इन्हें भी खली तथा इन्होंने इस पराधीनता को पाप बताते हुए कहा कि पराधीन व्यक्ति को सब ही हीन समझते हैं तथा ऐसे व्यक्ति से कोई भी प्रीत नहीं करता। पराधीन व्यक्ति का कोई भी धर्म नहीं होता। इसलिए हम सब भारतीयों को जाति, धर्म आदि मतभेदों को छोड़कर इस पराधीनता से मुक्त होने का आह्वान करते है–

पराधीनता पाप है,
जान लेहू रे मीत ।
रैदास दास प्राधीन सो
कौन करें हैं प्रीत।।

***

पराधीन को दीन क्या,
पराधीन बेदीन।।
रैदास दास प्राधीन कौ,
सबहिं समझे हीन।।

इन पंक्तियों में संत रैदास के मन में छिपी विद्रोह की चिंगारी स्पष्ट परिलक्षित होती है। सत्य भी है ऐसा संघर्ष जीवी व्यक्ति किसी भी प्रकार की परतन्त्रता को कहां स्वीकार कर सकता है। संत रैदास एक ऐसे स्वराज की कल्पना करते थे, जहां पर प्रत्येक व्यक्ति को अन्न मिले तथा सब मनुष्य बराबर हों, किसी प्रकार की ऊंच-नीच न हो, सब लोग प्रसन्न रहें। कुल मिलाकर यह एक साम्यवादी, समाजवादी व्यवस्था की कल्पना करते हैं।

ऐसा चाहौ राज मैं,
जहां मिले सबन को अन्न।
छोट बड़ों सभ सम बसै,
रैदास रहें प्रसन्न।।

उपर्युक्त समस्त, विवेचन के उपरान्त निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संत रैदास का जीवन और काव्य उदात्त मानवता के लिए आवश्यक सदाचारों के शाश्वत सैद्धांतिक मूल्यों का अक्षय भण्डार है, जिसमें से प्रत्येक वर्ग और स्थिति तथा मानसिक स्तर का व्यक्ति अपने लिए सुंदर-सुंदर मोतियों का चुनाव सुगमता से कर सकता है।

उन्होंने हिंदू-मुसलमानों को उनके यथार्थ स्वरूप यानी इंसान की पहचान में स्थापित कर भावात्मक एकता स्थापित करने के प्रयास किया। छूआछूत तथा वर्ण व्यवस्था जैसी अविद्यापूर्ण दृष्टि का विरोध कर सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अचूक औषधि तैयार की। 'जीव हत्या' को पाप घोषित कर मांसाहार जैसी प्रवृत्ति को समाप्त करने का प्रयास किया तथा अंहिसा के सिद्धान्त का प्रचार किया। वहीं पर मानव मात्र को पूजा के साथ-साथ श्रम के प्रति आस्था का भी उपदेश दिया। इससे भी बड़ी बात जो उस युग के किसी और संत कवि के काव्य में दिखाई नहीं देती, वह है उनकी स्वतंत्र चेतना। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्यापक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई थी और एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें विषमतायें न हो। प्रत्येक व्यक्ति श्रम करके जीविकोपार्जन करे तथा भारत के सभी लोग मिलकर देश की भूमि पर रहें तथा इसके सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करें।

इन संपूर्ण तथ्यों पर गम्भीरता से विचार करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि संत रैदास के काव्य का वैचारिक आधार बहुत दृढ़ तथा उसकी भावात्मक पृष्ठभूमि बहुत ही विस्तृत तथा सामाजिक महत्त्व की है जिसकी प्रासंगिकता सामयिक संदर्भों में आज भी असंदिग्ध है।❑

सीधा संवाद

नवयान क्या है?[1]

डॉ. रत्नेश कातुलकर
नॉन रेसिडेंट फेलो,
उबोन राजधानी विश्वविद्यालय,
थाईलैंड
Email
ratnesh-katulkar@gmail-com

आज के समय में जब भी बौद्ध धर्म पर आंबेडकरी परिप्रेक्ष्य में चर्चा होती है, तो अकसर इसकी पहली विशेषता 'समता' और दूसरी 'वैज्ञानिक सोच' बताई जाती है, लेकिन हकीकत यह है कि दुनिया में जिस तरह का बौद्ध धर्म प्रचलित है, वह अन्य पारंपरिक धर्मों से ज्यादा अलग नहीं है। खासकर तिब्बत में प्रचलित बौद्ध धर्म, हर समझदार व्यक्ति को बौद्ध धर्म से ज्यादा ब्राह्मणत्व के करीब लगता है। वहीं थेरवादी देशों श्रीलंका व थाईलैण्ड में भी खुलेआम हिंदू देवी-देवताओं जैसे इंद्र, विष्णु आदि की पूजा उनके बौद्ध धर्म का अभिन्न भाग है। सहजयान, तंत्रायान, मंत्रयान और वज्रयान की तो बात ही अनौखी है जहां खुलकर मद्य, मांस, मैथून व मुद्रा प्रचलित है. इतना ही नहीं ये तमाम पंथ जातिवाद, लिंगभेद और तमाम विषमताओं को सही ठहराते हैं. जाहिर है ये सब प्रतिक्रांतिकारी मिलावट हैं जिसने बुद्ध के मूल दर्शन को बर्बाद करने में कोई कसर नहीं छोडी है। ऐसे में बहुसंख्यक आबादी को इन तमाम यानों की पटरी से उतर गई बातों को वापस पटरी पर लेने के लिए वैज्ञानिकता और इंसानियत की राह पर चलते हुए असली आजादी हासिल करने के लिए नवयान जरूरी है।

'नवयान' दो शब्दों 'नव' और 'यान' के मेल से बना है, जहां नव का मतलब 'नया' तो 'यान' का मतलब वाहन होता है। यान शब्द का इस्तेमाल प्रत्येक पारंपरिक बौद्ध पंथ अपनी विशिष्ट शिक्षाओं को व्यक्त करने के लिए करता रहा है। ठीक इसी शैली में नवयान के साथ भी यान जुड़ा। हालांकि नवयान शब्द की सटीक उत्पत्ति अस्पष्ट है, किंतु इसका सार्वजनिक रूप से सबसे पहला उपयोग कैप्टन जे ई एलम ने अपनी किताब 'नवयान बुद्धिस्म एंड मॉडर्न थॉट' में किया. इस शब्द नवयान को व्यापक प्रचार डॉ. आंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म को अपनाने के साथ जुड़ा हुआ है। 14 अक्टूबर 1956 में अपने सामूहिक धर्मांतरण की संध्या पर एक पत्रकार के प्रश्न के जवाब में, बाबा साहब डॉ. आंबेडकर ने कहा कि 'मेरा बौद्ध धर्म न तो हीनयान है न ही महायान, बल्कि इसे नवयान कहा जा सकता है।'[2] किंतु दुखद है उस पत्रकार ने बाबा साहेब से इस पर कोई प्रति प्रश्न नहीं किया नतीजतन हमें खुद

1. यह आलेख मेरी नई किताब 'नवयान दर्शन:बुद्ध की शिक्षाओं का आधुनिक विवेचन' का एक अंश है. इसका किंडल संस्करण नवयान दर्शन: बुद्ध की शिक्षाओं का आधुनिक विवेचन (Hindi Edition) eBook % Katulkar] Ratnesh% Amazon-in% Kindle Store पर उपलब्ध है. एवं प्रिंट संस्करण के लिये लेखक से संपर्क किया जा सकता है.

''उन्होंने अपनी प्रभावशाली परंतु विवादास्पद पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' में भी यही दृष्टिकोण अपनाया था। पारंपरिक थेरवादी भिक्खु इस किताब को स्वीकार नहीं कर पाए थे। वे इसकी बड़ी कठोर और कटु आलोचना तक से नहीं चूके। उनका मानना था कि यह पुस्तक बुद्ध की शिक्षाओं का प्रामाणिक प्रति-निधित्व नहीं है, बल्कि डॉ. आंबेडकर का राजनीतिक दर्शन है।''

डॉ. आंबेडकर के शब्दों में नवयान का कोई विवरण उपलब्ध नहीं हो पाया।

काफी पहले से ही डॉ. आंबेडकर की बौद्ध धर्म पर लेखनी ये दिशा तय कर चुकी थी। विशेष रूप से सन् 1950 के उनके लेख 'बुद्ध और उनके धर्म का भविष्य' बौद्ध धर्म की वैज्ञानिक, आधुनिक और मानववादी व्याख्या को दर्शाता है, जो नवयान के सिद्धांतों की ही प्रस्तुति है। बाद में उन्होंने अपनी प्रभावशाली परंतु विवादास्पद पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' में भी यही दृष्टिकोण अपनाया था। पारंपरिक थेरवादी भिक्खु इस किताब को स्वीकार नहीं कर पाए थे। वे इसकी बड़ी कठोर और कटु आलोचना तक से नहीं चूके। उनका मानना था कि यह पुस्तक बुद्ध की शिक्षाओं का प्रामाणिक प्रतिनिधित्व नहीं है, बल्कि डॉ. आंबेडकर का राजनीतिक दर्शन है। अपनी आलोचना को बढ़ाते हुए, वे यहां तक कहने से नहीं चूके कि इस किताब का शीर्षक 'बुद्ध और उनका धम्म' के बजाय 'डॉ. आंबेडकर और उनका धम्म' होना चाहिए।[3]

पारंपरिक भिक्खुओं की यह प्रतिक्रिया हास्यास्पद है, लेकिन आज भी कई पारम्परिक बौद्ध अपने इसी मत पर अड़े हुए हैं। परंपरावादी बौद्ध किसी भी रूप में तिपिटक पर सवाल उठता नहीं बर्दाश्त कर पाते क्योंकि वे बेचारे इस धारणा से ग्रसित हैं कि तिपिटक शब्दशः बुद्ध वचन है।

तिपिटक के काल-निर्धारण के साथ बहुत छेड़छाड़ होती रही है। जैसाकि हमने पहले कहा है कि तिपिटक का अंतिम रूप ईसा की तीसरी शताब्दी में हुआ। जबकि बुद्ध ने अपने धम्म का प्रवर्तन ईसा से छठी शताब्दी पूर्व किया था। शताब्दियों के इस लंबे अंतराल में न जाने कितनी ही मूल शिक्षा नष्ट हो गई होगी और कितनी ही नई शिक्षा शामिल होती गई होगी।[4]

तिपिटक में मिलावट के मामले में यह जानना जरूरी होगा कि इसकी औपचारिक शुरुआत बुद्धघोष के संपादन से हुई जो थाई भिक्खु बुद्धदास के अनुसार तीन पीढ़ियों से वैदिक ब्राह्मणों का वंशज था, इतना ही नहीं उसने खुद भी अपने जीवन का एक बड़ा भाग ब्राह्मण विचारधारा के समर्पित अनुयायी के रूप में गुजारा था। ऐसे में उसके अवचेतन मन पर ब्राह्मण दर्शन का गहरा प्रभाव रहा होगा। इसलिए बुद्धघोष ने तिपिटक के संपादन के समय अपने अवचेतन मन के प्रभाव से गलत व्याख्या की होगी या हो सकता है कि यह गड़बड़ उन्होंने जानबूझकर की हो।[5] बुद्धघोष के कारण ही तिपिटक में अंधविश्वास के तमाम तत्व जैसे, पुनर्जन्म की बकवास और पटिच्चसमुप्पाद जैसी तार्किक शिक्षा की अवैज्ञानिक अव-धारणा शामिल हुई जो बौद्ध धर्म की स्थायी पहचान बन बैठी। उसके तिपिटक के सम्पादन में सबसे बडी ज्ञात शर्मनाक हरकत तो यह रही कि उसने इसके लिये भारत के भिन्न-भिन्न भागों से अर्थकथाएं मंगवाई थी, उन्हें अपने तिपिटक के संपादन के साथ ही जलाकर नष्ट कर डाला।[6] नतीजतन उनके द्वारा की गई मिलावटों का कोई सबूत नहीं बचा रह सके। सच कहे तो जिस तिपिटक को आज बुद्ध वचन प्रचारित किया जा रहा है उसका कितना ही भाग बुद्ध वचन न होकर बुद्धघोष वचन है।

अब महायान को देखें तो वह थेरवाद के विपरीत, संस्कृत को अपनी आधार भाषा के रूप में उपयोग करता था। संस्कृत निस्संदेह पालि भाषा के बाद उत्पन्न हुई तथा बुद्ध के द्वारा स्वयं कभी उपयोग नहीं की गई थी।[7] इस नई भाषा का लाभ यह हुआ कि महायान पंथ समाज के संभ्रांत तबके में आसानी से स्वीकार्य हो गया। महायानियों को थेरवादियों के विपरीत एक बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा। उनके लिए यह चुनौती थी कि संस्कृत भाषा के चलते उनके रचित ग्रंथ को कैसे बुद्ध का वचन साबित करें ? इससे निपटने के लिए महायान लेखकों ने एक चालाकी भरी रणनीति अपनाई। उन्होंने एक नया दावा पेश किया कि उनके ग्रंथों की सामग्री उनके लेखकों की अपनी रचना नहीं है, बल्कि वे तो सीधे बुद्ध या बोधिसत्वों के शब्द हैं। ऐसा कैसे हुआ तो इसके जवाब में वे कहते हैं कि जब हम अपने गहरे ध्यान में थे तब बुद्ध या संबंधित बोधिसत्व ने साक्षात दर्शन देकर हमें ये उपदेश दिए। हम लेखकों ने केवल इन संदेशों को ग्रंथों के रूप में

लिपिबद्ध भर तो किया यानी इन महायान ग्रंथों के वास्तविक लेखक बुद्ध या बोधिसत्व ही हुए। इस प्रक्रिया में एक महायानी भिक्षु की भूमिका केवल एक लिखने वाले भर की रही।

आश्चर्य कि महायानी लेखकों का यह हास्यास्पद दावा काम कर गया और इन रचनाओं को समाज से सहज स्वीकृति मिल गई। ऐसा दावा आगे चलकर वज्रयान और बाद के अन्य पंथों ने भी जमकर किया। जिनमें सर्वशक्तिमान बुद्ध और बोधिसत्वों की कल्पना रची गई.

बुद्ध धम्म में इस बदलाव से अंधविश्वास, पारंपरिकता, और पाखण्ड का रास्ता शुरू हुआ। इस संदर्भ में भी रीस डेविड्स लिखते हैं 'बोधिसत्व को उद्धारकर्ता के रूप में पेश करना बुद्ध की आत्म-नियंत्रण और मन को प्रशिक्षित करने वाली प्रारंभिक शिक्षाओं के खेत में खरपतवार के उगना जैसा था, जो अंततः बौद्ध धर्म के पतन का कारण बनीं।'[8]

बौद्ध धर्म में इस बदलाव से लोगों के मन पर भारी असर पड़ा। अब उनका ध्यान बुद्ध की व्यावहारिक और सरल मानवतावादी शिक्षाओं से हटकर धार्मिक अनुष्ठानों, प्रार्थनाओं और अन्य सांसारिक प्रगति की लालसा में लगने लगा। अनुशासित वातावरण में मंत्रोच्चारण की लय और धार्मिक समारोहों की सुंदरता भी कई नये लोगों को महायान में खींच लाई जो लंबे समय तक कायम रही। हालांकि कुछ शताब्दी बाद इस कठोर दिनचर्या के कारण कुछ अनुयायियों में बोरियत और उत्साह की कमी होने लगी। इस उबाऊपन के चलते जनता के एक हिस्से ने इन जटिल समारोहों को नकारना शुरू कर दिया। लेकिन पूजा-पाठ की लत तो उनमें लग ही चुकी थी, तब इस कमी को भरने के लिए एक सरल आराधना की विधि सामने आई। इस नए दृष्टिकोण का उद्देश्य धार्मिक प्रथाओं को अधिक सरल और सामान्य जनता के लिए आसान बनाना था। इसे बाद में सहजयान के रूप में जाना जाने लगा। 'सहज' का अर्थ सरलता या आसान होता है। यह एक तरह से महायानी पुरोहितवाद के खिलाफ एक बगावत थी, किंतु यह बदलाव क्रांति नहीं था इसलिए कुछ समय के बाद यह और भी बड़े पाखण्ड में बदल गया। आम लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए चमत्कारों का जमकर उपयोग होने लगा।

सहजयान ने खुलकर तांत्रिक विधि को पेश किया। इन विधियों में आत्मा की पूजा और विभिन्न प्रकार के सफेद और काले जादू शामिल थे। इसके अलावा उन्होंने एक उन्मुक्त जीवन शैली को अपनाना शुरू किया, जिसने मूल बौद्ध धर्म के नैतिक नियमों और वर्जनाओं को ताक पर रख दिया। इस बदलाव ने खुली यौन गतिविधियों और मादक द्रव्यों के सेवन जैसी प्रथाओं का जन्म दिया। इस अतिवाद का नतीजा यह हुआ कि सामान्य लोग इन पाखण्डों से निराश हो गए।

ऐसे में वज्रयान पंथ उभरा। जिसने सहजयान और महायान तत्वों का एक सामंजस्यपूर्ण संश्लेषण प्रस्तुत किया। इसने एक ओर बुद्ध को देवता और बोधिसत्वों को अर्ध-देवता के रूप में सम्मानित किया, जो चमत्कारी शक्तियों से संपन्न थे। साथ ही उन्होने मंत्रोच्चारण और जादुई अनुष्ठानों को भी जारी रखा जो लोगों की मनोवैज्ञानिक समस्याएं जिन्हें भूत-प्रेत बाधा समझा जाता है का हल और काले जादू से संबंधित मुद्दों को भी दूर करने का दावा करती थी। इस मिश्रित अभियान ने वज्रयान को लोक जनों में स्थापित करने की राह प्रशस्त की। यह संप्रदाय आगे चलकर तंत्रयान और मंत्रयान में विकसित हुआ, जहां जादुई ताबीज और यौन प्रथाओं का व्यापक उपयोग आध्यात्मिक प्रथाओं के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। पंचमकार की प्रथा, जिसे पांच 'म' अर्थात मत्स्य (मछली), मांस (मांस), मैथुन (यौन संबंध), मुद्रा (प्रतीकात्मक इशारे या यौन स्थितियां) और मदिरा (शराब)—के रूप में भी जाना जाता है को अब आध्यात्मिक महत्व प्राप्त हो गया। पुजारियों ने अपने

''उनके लिये यह चुनौती थी कि संस्कृत भाषा के चलते उनके रचित ग्रंथ को कैसे बुद्ध का वचन साबित करें? इससे निपटने के लिए महायान लेखकों ने एक चालाकी भरी रणनीति अपनाई। उन्होंने एक नया दावा पेश किया कि उनके ग्रंथों की सामग्री उनके लेखकों की अपनी रचना नहीं है, बल्कि वे तो सीधे बुद्ध या बोधिसत्वों के शब्द हैं। ऐसा कैसे हुआ तो इसके जवाब में वे कहते हैं कि जब हम अपने गहरे ध्यान में थे तब बुद्ध या संबंधित बोधिसत्व ने साक्षात दर्शन देकर हमें ये उपदेश दिए। हम लेखकों ने केवल इन संदेशों को ग्रंथों के रूप में लिपिबद्ध भर तो किया यानी इन महायान ग्रंथों के वास्तविक लेखक बुद्ध या बोधिसत्व ही हुए। इस प्रक्रिया में एक महायानी भिक्षु की भूमिका केवल एक लिखने वाले भर की रही। आश्चर्य कि महायानी लेखकों का यह हास्यास्पद दावा काम कर गया।''

अनैतिक कार्यों को जायज ठहराने के लिए, बुद्ध और अन्य बोधिसत्वों की छवियों को यौन संबंधों में संलग्न दिखाना शुरू कर दिया। उनकी इस हरकत ने समाज को भ्रष्ट और अनैतिक जीवन शैली को अपनाने के लिए प्रेरित किया। कालांतर में कुछ राजनीतिक और सामाजिक कारकों के अलावा ऐसी गिरावट, अवैज्ञानिक, तर्कहीन और अमानवीय मिलावटों ने भारत से बौद्ध धर्म नष्ट करने में अहम भूमिका अदा की।

ये तमाम विकृतियां विभिन्न बौद्ध पंथों में आज भी कायम है। जाहिर है ये सब बुद्ध की सोच के विपरीत हैं और इसलिए इन्हें किसी भी कीमत पर धम्म नहीं माना जाना चाहिए। लेकिन ये मिलावटें इतनी गहरी जड़े जमा चुकी हैं कि इन्हें दूर करना बेहद कठिन हो गया है। अब 'अभिधम्मपिटक' को ही देखिये, जहां बुद्ध को जाति व्यवस्था को सही ठहराते हुए दिखाया गया है।[9] जाहिर है यह स्पष्ट रूप से ब्राह्मणवादी मिलावट है। यह मिश्रण कब शुरू हुआ यह तो नहीं कह सकते, किंतु यह सच है कि ऐसी मिलावटें बाद की शताब्दियों तक जारी रही। श्रीलंका के एक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'महावंस' को देखिए। यह ग्रंथ एक हिंदू देवता विष्णु को समर्पित किया गया है।[10] यह उदाहरण बौद्ध ग्रंथों पर ब्राह्मणी प्रभाव को दिखाने के लिए पर्याप्त है।

लेकिन इस शर्मनाक हकीकत के बावजूद भी थेरवादी अपने ग्रंथों में किसी भी किस्म की मिलावट से सीधे इनकार करते हैं।

ऐसी तमाम मान्यताओं के विपरीत, नवयान दर्शन तमाम आलोचनाओं के लिए बिल्कुल खुला है। यह 'कालाम सुत्त' को अपना आदर्श मानता है जो बुद्ध के नाम पर ऐसी शिक्षा जो तर्क और मानवता के विपरीत है को नकारने से नहीं झिझकता। नवयान का अंतिम उद्देश्य बुद्ध या उनके धम्म की श्रेष्ठता का दावा करना नहीं है। बल्कि इसका लक्ष्य दुनिया को एक ऐसी जगह में बदलना है जहां सभी को शांति, स्वतंत्रता, समानता और न्याय हासिल हो सके। नवयानियों के लिए बौद्ध धर्म इस बदलाव और क्रांति को हासिल करने का एक अनमोल साधन है। डॉ. आंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' में इस पद्धति को और स्पष्ट करते हुए कहा 'बुद्ध तर्कसंगत थे, बुद्धिसंगत थे। इसके अलावा कुछ नहीं थे। इसलिए तिपिटक में जो भी तर्क संगत और बुद्धिसंगत न हो, उन्हें बुद्ध के वचनों के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि बुद्ध कभी भी किसी ऐसी चर्चा में प्रवेश नहीं करते थे जो मनुष्य के लिए कल्याणकारी न हो। इसलिए तिपिटक में जो मनुष्य के कल्याण से संबंधित नहीं है, उसे बुद्ध के शब्दों के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।'[11]

कालाम सुत्त और डॉ. आंबेडकर के उपरोक्त स्पष्टीकरणों के आधार पर नवयान हर किसी शोधार्थी को धम्म के अध्ययन की एक ऐसी सरल और सटीक विधि प्रदान करता है, जिसके माध्यम से कोई भी बुद्ध की मूल शिक्षा के करीब पहुंच सकता है।

नवयान को केवल डॉ. आंबेडकर की लेखनियों और दर्शन तक सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि इसका व्यापक दृष्टिकोण और अवधारणा को सीमित करता है। वास्तव में, डॉ. आंबेडकर से पहले भी और वर्तमान में कई बुद्धिजीवियों ने नवयान पद्धति के संवर्धन में योगदान दिया है। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है नवयान शब्द का पहला ज्ञात उपयोग वर्ष 1930 में कैप्टन जे. ई. एलम की पुस्तक 'नवयान बौद्ध धर्म और आधुनिक सोच' के प्रकाशन के साथ हुआ था। यह नवयान की पश्चिमी व्याख्याओं में से एक थी, जिसने पारंपरिक बौद्ध शिक्षाओं को आधुनिक सोच और मूल्यों के ढांचे में पुनः संदर्भित किया।

किंतु डॉ. आंबेडकर के पूर्व के भारतीय लेखकों पर नजर दौड़ाई जाए तो सबसे पहले हम पी.एल. नरसु (1861–1934) को पाते हैं जिन्होंने परम्परावाद और पाखंड से बौद्ध धर्म को मुक्त कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। अपनी कृतियों जैसे 'एसेंस ऑफ बुद्धिज्म' (बौद्ध धर्म का सार) (1907), 'व्हाट इज बुद्धिज्म (1916)', 'स्टडी ऑफ कास्ट (1922)', और 'रिलिजन ऑफ मॉडर्न बुद्धिस्ट (1930)' में नरसु ने कर्म पर आधारित पुनर्जन्म और अंध-अंधविश्वासी विचारों को गैर-बौद्ध अवधारणाओं के रूप में प्रमाणित कर परंपरावादी बौद्धों को चुनौती दी।

एक अन्य प्रतिष्ठित विद्वान और पालि विशेषज्ञ, धर्मानंद कोसंबी (1876–1947) ने ठीक यही दृष्टिकोण अपनाया। अपनी कृतियों 'भगवान बुद्ध दर्शन', 'बौद्ध धर्म और अहिंसा', और 'सिद्धार्थ का गृहत्याग', में उन्होंने सिद्धार्थ के गृहत्याग के पारंपरिक कथा को चुनौती दी। कोसंबी ने ऋषि असित द्वारा की गई भविष्यवाणी और चार दृश्यों (बीमार, वृद्ध, मृत और संयासी) के पारंपरिक वर्णन का आलोचनात्मक विश्लेषण किया, जो सिद्धार्थ के गृहत्याग

के निर्णय के प्रेरक बतलाए जाते हैं। इसके अलावा उन्होंने 'पवज्जा सुत्त' जैसे स्रोतों का उपयोग करके सिद्धार्थ के संन्यास अपनाने के असली और तार्किक कारणों का पता लगाया।

नरसु और कोसंबी की कृतियों ने डॉ. आंबेडकर के मन पर गहरा प्रभाव डाला, और बौद्ध धर्म अपनाने के उनके निर्णय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. आंबेडकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' में इनकी लेखनियों का व्यापक रूप से उपयोग किया है।

डॉ. आंबेडकर के बाद के भारत में, उनके बहुत से अनुयायियों ने अपनी रचनाओं में नवयान पद्धतियों को अपनाया और विकसित किया। उदाहरण के लिए, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन (1905-1988) की पुस्तक 'बौद्ध धर्म एक बुद्धिवादी अध्ययन', जो 1960 के दशक में हिंदी में प्रकाशित हुई। यह प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई है जिसमें कुल 263 प्रश्नों का उत्तर बौद्ध धर्म की तार्किक व्याख्या है। यह सरल पुस्तक बौद्ध शिक्षाओं और सिद्धांतों की एक स्पष्ट और तार्किक समझ प्रदान करने का प्रयास करती है। वे बौद्ध सिद्धांतों को लेकर इतना सजग थे कि उन्होने 'द बुद्ध एंड हिज धम्म' के हिंदी अनुवाद करते समय इसकी प्रस्तावना में लिखा कि यदि बौद्ध पुनर्जन्म तथा अबौद्ध पुनर्जन्म में कोई अंतर नहीं, यदि बौद्ध कर्म तथा अबौद्ध कर्म में कोई अंतर नहीं और यदि बौद्ध मोक्ख या निर्वाण तथा अबौद्ध मोक्ष में कोई अंतर नहीं तो फिर बौद्ध धर्म कीअपनी कुछ भी विशेषता नहीं हुई। इसलिये भले ही बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवादी धर्म दोनों में ही पुनर्जन्म, कर्म, निर्वाण, मोक्ष का उपयोग हुआ है, लेकिन इन दोनों जगह इसके अर्थ बिल्कुल उलट जाते हैं। बौद्ध दर्शन पूर्णतया अनात्मवादी है और ब्राह्मणवादी दर्शन बिल्कुल आत्मवादी।

डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन की अन्य तमाम कृतियां भी डॉ. आंबेडकर के बाद के भारत में नवयान दर्शन की निरंतरता को सिद्ध करती हैं और बौद्ध धर्म के तार्किक और मानववादी दृष्टिकोण बढ़ावा देने में सफल हुई है।

मुख्यधारा के लेखकों में एल. एम. जोशी (1935-1984) ने, न केवल कर्म आधारित पुनर्जन्म के कट्टरपंथी सिद्धांत का विरोध किया, बल्कि बोधिसत्व की अवधारणा को ब्राह्मणवाद के अवतारवाद से प्रभावित गैर-बौद्ध विचार के रूप में चुनौती दी। वे बौद्ध अध्ययन और तुलनात्मक धर्म के अध्ययन के एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान और प्रोफेसर थे। उनकी पुस्तक 'स्टडीस इन द बुद्धिस्टिक कल्चर ऑफ इंडिया ड्यूरिंग सेवेंथ एंड एट्थ सेंचुरीस ए डी' ने इन सदियों के दौरान भारत में बौद्ध धर्म के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रभाव की व्यापक जांच की है। 'डिसर्निंग द बुद्ध: अ स्ट्डी ऑफ बुद्धिज्म एंड ब्राह्मनिकल एटिट्यूड टू इट' बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद के बीच के संबंध की जांच करते हुए बौद्ध विचार के अद्वितीय पहलुओं को उजागर करती है। 'ब्राह्मणिज्म, बुद्धिस्म एंड हिंदुइज्म: एन एसे ऑन देयर ऑरिजिंसएंड इंटरेक्शन' इन तीनों धार्मिक परंपराओं की उत्पत्ति और अंत: क्रियाओं परचर्चा करती हुई तर्क देती है कि बौद्ध धर्म इन धर्मों से भिन्न है जो बुद्ध की अंतर्दृष्टि का अद्वितीय परिणाम है। 'आस्पेकट्स ऑफ बुद्धिज्म इन इंडियन हिस्ट्री' भारतीय इतिहास पर बौद्ध धर्म के प्रभाव के विभिन्न पहलुओं में विश्लेषण करती है।

ऐसा नहीं कि यह क्रांतिकारी दृष्टिकोण केवल भारतीय विचारकों तक सीमित रहा, बल्कि कुछ अंतर्राष्ट्रीय लेखकों की रचनाओं में भी प्रमुखता से उजागर हुए। इनमें प्रमुख थाईलैंड के बुद्धदास भिक्खु (1906-1993) थे। जिन्होंने पारंपरिक कर्म आधारित पुनर्जन्म की अवधारणाओं का विरोध किया और पटिच्चसमुप्पाद (प्रतीत्य समुत्पाद) की परम्परागत व्याख्या को बौद्ध शिक्षाओं का हिस्सा मानने से इनकार कर दिया। जैसा की हम पहले उल्लेख कर चुके हैं उन्होंने तिपिटक में ब्राह्मणी दर्शन की घुसपैठ करने के लिए बुद्धघोष को जिम्मेदार ठहराते हुए उनकी कड़ी आलोचना की। उनकी यह किताब 'पटिच्चसमुप्पाद: प्रेक्टिकल डिपेंडेंट ऑरिजिनेशन' थी, जिसमें उन्होंने पटिच्च-समुप्पाद के पारंपरिक सिद्धांत जो पूर्वजन्म, वर्तमान जन्म और भविष्य के जन्म की कड़ी को खुली मिलावट बताते हुए इसे सिरे से खारिज कर इस सिद्धांत का एक नया और तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

बुद्धदास भिक्खु ने अन्य कई प्रभावशाली रचनाएं लिखीं हैं। उनकी व्याख्याएं बुद्ध की मूल शिक्षाओं से जुड़ने पर जोर देती हैं, जो व्यावहारिक और समाजोपयोगी हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म सिद्धांत को समझने के लिए हरदम तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग किया। उनकी पुस्तकें और भाषण आज भी इंटरनेट और बाजार में लोकप्रिय हैं। उनकी किताबें आज भी थाईलैंड के सुवर्णभूमि अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे

पर बिक्री होते देखें जा सकते हैं।[12] उनका विहार, सुआन मोख्ख, और संस्था इंदपन्नो उनकी विचारधारा का प्रचार कर रहे हैं। हालांकि, यह एक कड़वी सच्चाई है कि आज के अधिकांश थाई बौद्ध उनके शिक्षाओं से अनजान हैं।

आधुनिक लेखकों में श्रीलंका के नलिन स्वारिस एक प्रमुख मानवाधिकार कार्यकर्ता और विद्वान थे, जो बौद्ध धर्म, मानवाधिकार और समाज सुधार के लिए जाने जाते हैं। उनके विद्वतापूर्ण कार्य बौद्ध शिक्षाओं और उनके आधुनिक सामाजिक मुद्दों पर हैं। उनकी किताब 'बुद्धिज्म, ह्युमन राइट्स एंड सोशलरीनेवल' बुद्ध के मुक्ति संदेश के मूल सिद्धांतों की जांच करती हुई आधुनिक सामाजिक चुनौतियों में प्रासंगिक दर्शाती है। यह पुस्तक मानवाधिकारों को संबोधित करने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में बौद्ध दर्शन की परिवर्तनकारी क्षमता को उजागर करती है।

पाश्चात्य विद्वानों में, कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने नवयान दृष्टिकोण को अच्छी तरह से अपनाया है। उदाहरण के लिए, डेविड एल मैकमहन ने बौद्ध धर्म और आधुनिकता पर लिखते हुए, उन्होंने विज्ञान, मनोविज्ञान, साहित्य, रोमांटिसिज्म और ट्रांसेंडेंटलिज्म पर शोध करते हुए बौद्ध धर्म को नए क्षितिज तक पहुंचाया। जोनाथन एस वाट्स एंगेज्ड बुद्धिज्म के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उनकी कृति 'रीथिंकिंग कर्म: द धर्मा ऑफ सोशल जस्टिस' पारम्परिक कर्म सिद्धांत का कड़ाई से विरोध करते हुए बौद्ध धर्म को आधुनिक और मानवीय संदर्भ में प्रस्तुत करती है।

वहीं स्टीफन बैचलर पश्चिमी विचारकों में अपने धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण से बुद्ध की शिक्षाओं के लिए जाने जाते हैं। वे बिना धार्मिक पहचान के व्यवहारिक और नैतिक जीवन पर जोर देते हैं। अपनी पुस्तक 'बुद्धिज्म विदाउट बिलिफ्स' में, बैचलर धर्मनिरपेक्ष बौद्ध धर्म की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं, जो पारंपरिक धार्मिक विश्वासों के बिना जागरूकता और नैतिक जीवन पर केंद्रित है। 'कन्फेशन्स ऑफ ए बुद्धिस्ट एथीस्ट' उनकी व्यक्तिगत यात्रा का वर्णन करती है। 'लिविंग विद द डेविल' में, बैचलर बौद्ध धर्म में 'मार' (प्रलोभन के कारक) की अवधारणा की जांच करते हैं, वे मार को वास्तविक मानने के बजाये व्यक्तिगत चुनौतियों के रूपक के रूप में समझाते हैं। 'आफ्टर बुद्धिज्म:रिथिंकिंग द धर्मा फॉर ए सेक्युलर एज' में बैचलर आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष दर्शकों के लिए बुद्ध की शिक्षाओं की पुनर्कल्पना करते हैं, मानव समृद्धि और नैतिक जीवन पर जोर देते हैं। उनकी एक अन्य कृति 'सेक्युलर बुद्धिज्म: इमेजिनिंग द धर्मा इन एन अनसर्टेन वर्ल्ड' निबंधों का एक संग्रह है, जो बौद्ध प्रथाओं को धर्मनिरपेक्ष बनाने और समकालीन जीवन के लिए अनुकूल बनाने की कोशिश करती है।

इस तरह बुद्ध के धम्म को एक नए रूप में समझने की कोशिश, जिसे हम 'नवयान' कहते हैं, कई लेखकों, दार्शनिकों और समाज में परिवर्तन लाने वाले व्यक्तित्वों द्वारा की गई एक सार्थक पहल है।□

संदर्भ

2. यह एक तथ्य प्राथमिक स्रोत पर आधारित है, उल्लेखनीय है कि इस वक्त बाबासाहेब के पास उनके बहुत से सहयोगी मौजूद थे, जिनमें नागपुर के प्रो. चंदू मस्के के पिताजी भी थे, जिन्होंने इस चर्चा को खुद सुना उन्हीं की सूचना के आधार पर मैंने बाबासाहेब का यह उत्तर शब्दश: उद्धृत किया है.

3. बाबा साहेब द्वारा लिखित 'द बुद्ध एंड हिज धम्म' की तीखी आलोचना महाबोधि जर्नल में प्रकाशित हुई थी, जिसमें इस आलोचक ने लिखा था कि इस किताब का बुद्ध के दर्शन से कोई नाता नहीं बल्कि यह डॉ. आंबेडकर के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये की गई उनकी मनमानी व्याख्या है। यहां हमें यह भी याद रखना चाहिये कि पारम्परिक बौद्धों ने डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के इस किताब एक प्री-ड्राफ्ट 'द बुद्धा एन्ड हिज गॉस्पल' को भी कोई तवज्जों नहीं दी थी। अधिकांश परंपरावादी देशों में आज भी बाबा साहेब की इस कृति पर यही सोच चली आ रही है।

4. बुद्ध के काल में लिपि विकसित नहीं हुई थी, इसलिये उस समय उनकी शिक्षाओं को लिपिबद्ध नहीं किया गया था। इन शिक्षाओं को भिक्खुओं का एक वर्ग भाणक रट-रटकर याद रखा करते थे।

5. पॉसीटिव डिपेंडेंट ऑरिजिनेशन, बुद्धदास भिक्खु पृ. 93

6. भिक्खु धर्मरक्षित, विशुद्धि मार्ग (पहला भाग, प्रथम संस्करण 1956 पृ. 6)

7. आमतौर पर यह प्रचारित करते हुए स्थापित कर दिया गया है कि संस्कृत भाषा भारत की आरम्भिक भाषा थी, जिसके अपभ्रंश होते हुए प्राकृत एवं पालि भाषा का जन्म हुआ। किंतु आधुनिक बौद्ध लेखकों जैसे हबीर अंगार, प्रफुल्ल चंद्र राय और राजेंद्र प्रसाद ने इस मान्यता का खंडन करते हुए भाषा विज्ञान के आधार पर सिद्ध किया कि संस्कृत का जन्म पालि-प्राकृत के सदियों बाद उदय हुआ है। इस संदर्भ में देखे - हबीर अंगार द्वारा लिखित किताब 'पालि इज मदर ऑफ संस्कृत'।

8. बुद्धिस्म इन इंडिया, गेल ओम्वेट पृ. 114 से उद्धृत

9. देखे अभिधम्म इन डेली लाईफ, पृ. 213, 218, 231, 254, 255

10. क्वेस्चंस एंड अंसर ऑफ बुद्ध, ईजी एक्ट्रोन, देखे पहला पृष्ठ

11. बुद्ध और उनका धम्म पृ. 350-51

12. अपनी थाईलैंड यात्रा के दौरान मैंने खुद देखा है।

काव्य संगीति

श्याम निर्मोही की ग़ज़लें

मो.नं.- 8233209330

.1.

तआर्रुफ में जरा धीमें बोला कर
ओहदे नहीं, किरदार तोला कर

खालिस बातों से तजुर्बे कैसे होंगे
हादसों के शहर में तो डोला कर

झूठ बड़ी आसानी से बिकता है
सच भी झूठ की तरह बोला कर

इक रोज लूट जाएगी मिल्कियत
आव-ताव देखके राज खोला कर

अपनी सोच का पैकर बना पहले
हर सदा पर झट से ना दोला कर

इस राख में दबी हैं जो चिंगारियाँ
कभी उनको भी तो टटोला कर

बरबस ही कहाँ मिलती है मंजिले
पत्थरीले रास्तों से पॉव छोला कर

न बहक तहरीकी नारों से निर्मोही
ये अफीम लहू में यूँ ना घोला कर

माने:-

तआर्रूफ =परिचय। खघलिस=केवल।
मिल्कियत= हक, स्वामित्व। पैकर= मूर्त रूप, साकार स्वरूप। तहरीकी=क्रान्तिकारी/आन्दोलन।

.2.

संताप का ये सफर आज भी जिंदा है
इंसाँ-इंसाँ में अंतर आज भी जिंदा है

रोटी के वास्ते सूरज से होड़ लगाते हुए
ये झाड़ू-ओ-कनस्तर आज भी जिंदा है

चाँद और मंगल तक जा पहुँचा जमाना
पर मैला ढोता मेहतर आज भी जिंदा है

कागजों में ही बन रहे हैं पक्के आवास
गरीब का ये छप्पर आज भी जिंदा है

दुत्कारें जाते मंदिर की चौखटों पर जो
वो लहुलुहान पत्थर आज भी जिंदा है

शिकारी की नजर से बच निकला जो
वो घायल कबूतर आज भी जिंदा है

अतीत के कहर की दास्ताँ सुनाता हुआ
गाँव का बूढ़ा शजर आज भी जिंदा है

देखना किसी दिन फूट पड़ेगा 'निर्मोही'
दिलों में जो आंबेडकर आज भी जिंदा है

3.

मासूम-से चेहरों पर तनाव मिले
कितनी दहशत में मुझे गाँव मिले

हमने रोपी उम्मीद की क्यारियाँ
रौंदकर मूँछों पर देते ताव मिले

बस थोड़ी-सी रोशनी ही माँगी थी
जलते घरों के नक्श-ए-पाँव मिले

बेच डाली हैं नस्लों की जवानियाँ
मुस्तकबिल के सीने पे घाव मिले

कौम को बाँटने वाले हुक्मरानों से
बस झूठी एकता के प्रस्ताव मिले

कड़ी धूप में बैलून बेचता बचपन
कैसे उन को सुख की छाँव मिले

सदियों से ख्वाब नहीं देखें हमने
बस जख्मों भरे हाव-भाव मिले

निर्मोही इंसाफ की तलाश में रहा
हर लहजे में ही सौदे के दांव मिले

माने:-

नक्श-ए-पाँव = कदमों के निशान। मुस्तकबिल-भविष्य।

.4.

रंगे-सियार की तरह छलने लगे हैं लोग
कुछ इस तरह से बदलने लगे हैं लोग

अपनों को गिराने की ये कैसी होड़ है
देखिए चाल पर चाल चलने लगे हैं लोग

ढिले पड़ने लगे हैं तअल्लुकघत-ए-पाश
बस रेत की तरह फिसलने लगे हैं लोग

घर के बंटवारे भी सरे-आम होने लगे हैं
बरसात में कागज-से गलने लगे हैं लोग

आखिर किसने बाँटी गली-कूचों की हवा

अब अपने ही घरों में दहलने लगे हैं लोग
वफा की बातें कब की किताबी हो गई
अब तो छाती पर मूँग दलने लगे हैं लोग
जिनके सूफी लफ्ज थे रूहानी बयान थे
उन दरवेशों से भी जलने लगे हैं लोग
निर्मोही मासूम चेहरे दिल में खंजर लिए
आस्तीन में साँप-से पलने लगे हैं लोग

5.

जिंदगी को गमगीन कहूँ
हवादिसों को संगीन कहूँ
पुश्तों ने जो झेला भोगा
मैं उसे कैसे आमीन कहूँ
जिल्लतें पीस कर खाई हैं
मैं और किसे महीन कहूँ
एक पाप लफ्ज से डराया
क्यों न तुझे कमीन कहूँ
सर का बोझ है पाँवों पर
कैसे हालात हसीन कहूँ
सदी ने करवट ली है अब
एक के बदले मैं तीन कहूँ
ये बुनियादें हिलने लगीं हैं
खोदकर जब मैं जमीन कहूँ
मैं गर्दिशे-दौर-ए-जहाँ को
निर्मोही कैसे बेहतरीन कहूँ

माने:-

गमगीन = उदास, संतप्त, दुःखी। हवादिस = हादसा। संगीन = घोर तथा दंडनीय। आमीन = ऐसा ही हो, तथास्तु।गर्दिश-ए-दौर = समय का उलटफेर।

6.

ठहरे पानी से काइयाँ निकल आई
दबी हुई सच्चाइयाँ निकल आई
अपनों से उम्मीद थी रोशनाई की
मगर अंधेरी खाइयाँ निकल आई
अपना कहकर किनारे लगाते गए
भीड़ में भी तन्हाइयाँ निकल आई
मिट्टी के घरौंदे-से बिखरे हैं जख्म
हर दर्द से रुसवाइयाँ निकल आई
आज भी हुनर के अंगूठें काटे जाते
द्रोणों की परछाइयाँ निकल आई
छू लिया अबोध ने पानी का मटका
उमरावों की हवाइयाँ निकल आई
जो आईना दिखाने चले थे सबको
उन्हीं चेहरों से झाइयाँ निकल आई
मुहल्ला लाख बुराइयाँ करता रहा
मगर हरसूँ अच्छाइयाँ निकल आई
निर्मोही बीमार मर गया बे-इलाज
उसी घर में दवाइयाँ निकल आई

माने :- उमराव = कुलीन जन, अभिजात पुरुष, अमीर।

7.

कच्चे धागे पर यूँ नाचती है जिन्दगी
साँसों की क़ीमत माँगती है जिन्दगी
चंद सिक्कों के वास्ते नहीं ये करतब
पापी पेट ऐसे ही ढाँपती है जिन्दगी
जिस दिन न मिले निवाला रात भर
आसमाँ के तारें ताकती है जिन्दगी
कम्बख्त! हसरतें भी हाँफने लग गई
कितनी रफ्तार से भागती है जिन्दगी
हर इक सवाल का जवाब पाने को
कैसे लोहे के चन्ने चाबती है जिन्दगी
घर में अपना ही वजूद ढूँढने के लिए
गली-गली खाक छानती है जिन्दगी
कैसे उठती गिरती और सँभलती है
नाजुक डोर को यूँ थामती है जिन्दगी
हादसों को ये खबर नहीं है निर्मोही'
मुश्किलों का हल जानती है जिन्दगी

.8.

अब न तीर चुभतें हैं न खंजर चुभते हैं
आँखों में आज भी वो मंजर चुभतें हैं
खुशबू का कारोबार करने चला था मैं
नादाँ था फूलों के संग नश्तर चुभतें हैं
मेरे हिस्से की जमीं खेत सब खा गये
भूख से विकल अस्थि पंजर चुभतें हैं
भूलकर भी कोई मंत्र कानों में ना पड़ें
वो घाव आज भी अक्सर चुभतें हैं
शबरी के बेर और शंबूक से बैर क्यूँ
तुम्हारे प्रपंच अन्दर ही अन्दर चुभतें हैं
छल से काटा था एकलव्य का अंगूठा
हर युग में हम द्रोण की नजर चुभतें हैं
सूट-बूट पहनकर चलने लगा हूँ मैं भी
निर्मोही' को मेरे लाव-लश्कर चुभतें हैं

9.

सोए हुए समाज को जगाने की बात कर
मैदान में खुद को आजमाने की बात कर
छोड़ ताश-पत्ती और बैठकर गप्पे हांकना
पेट के वास्ते दो रोटी कमाने की बात कर
कब तक ढोएगा जाति की निचुड़ती परात
झाड़ू छोड़ अब कलम उठाने की बात कर
अर्श से फर्श पर ले आई ये नशाखोरी तुझे
छोड़ इसे चांद तारों पर जाने की बात कर
चारों तरफ अज्ञान का घना तिमिर छाया
घर-घर शिक्षा ज्योति जलाने की बात कर
कहीं से भी ढूंढ कर ला एक पतवार और
माझी बनके नैया पार लगाने की बात कर
आने वाली नस्लों के रास्ते अवरुद्ध न रहे
निर्मोही तू पथ से शूल हटाने की बात कर

काव्य संगीति

डॉ. राजवीर सिंह 'कमल'

मो.नं.- 9278448047

गीत-1

हिंदू राष्ट्र बनाएंगे ये अपने भारत देश में
फिर से सबको जीना होगा सामंती परिवेश में
यत्र तत्र सर्वत्र देव यहां ब्राह्मण ही कहलायेगा
मठाधीश बनकर वो ही मंदिर में शंख बजायेगा
फिर से सबको जीना होगा पाखण्डी परिवेश में।1

अब कोई शम्बूक ऋषि उपदेश नहीं दे पायेगा
फिर से कोई एकलव्य ना आगे बढ़ने पायेगा
गुरु घण्टाल द्रोण मिलेंगे भगवा धारी वेश में।2
मनमोहक और तरुण बालिका हर मंदिर में पायेंगी
रखैल देवदासी बन कर पंडो की भूख मिटायेंगी
गुंडे, चोर, लुटेरे होंगे सब संतों के वेश में।3

वही पुराने ढर्रे पर सब पुश्तैनी धंधे होंगे
न्याय दिलाने वाले सारे नयायधीश अंधे होंगे
जंगल राज बनेगा फिर से देखो अपने देश में।4

गाँव गली घर पगडंडी पर सामंती पहरा होगा
प्रजातन्त्र के अंग-अंग पर घाव बहुत गहरा होगा
फरयादी ही दोषी होंगे अब तो अपने देश में।5

जातिवाद का कहर भयंकर रोजी-रोटी खा जाएगा
चपरासी से हुकमरान तक सामंती ही पायेगा
मजलूम सभी मजबूर मिलेंगे भीख मंगेगे परिवेश में।6

मजलूमों की हर शिक्षा पर ये प्रतिबंध लगाएंगे
जाति सूचक शब्दों नफरत के बाग सजायेंगे
कदम-कदम पर अपमानों की झड़ी लगेगी देश में।7

सविंधान का भारत में अस्तित्व मिटाया जाएगा
हिंदू राष्ट्र और मनु ग्रंथ मिलकर सबको खा जाएगा
जाति धर्म पर खून खराबा होगा अपने देश में।8

हिंदू राष्ट्र बनेगा तो शैतान यहाँ जम जाएगा
कोठी बंगले कार साज सम्मान सभी छीन जाएगा
खानाबदोश बनेंगे सारे अब अपने ही देश में।9

जाति देखकर न्याय व्यवस्था हर आदेश सुनायेगी
सामंतो के क्रूर कहर से मानवता दह लायेगी
राज धर्म हुकमरान घायल कर देंगे देश में।10

लड़ते रहे सदा आपस में क़ीमत तुम्हीं चुकाओगे
रूखी-सूखी मिलेगी रोटी दर दर ठोकर खाओगे
गुलाम स्वत: ही बन जाओगे खुद अपने ही देश में।11

गर अस्तित्व बचाना है तो एक मंच पर आ जाओ
जुल्मी अत्याचारी से एक साथ मिल टकराओ
विजय मंत्र का सार छिपा है भीम राव सन्देश में।12

देश को मजबूत बनाओ

कुछ आधुनिक समाज सुधारकों ने
आजादी के स्वर्णिम महोत्सव काल में
सनातनी हिंदुओं को जगाया
गैर सनातनी हिंदुओं के
खिलाफ भड़काया स
गैर सनातनी हिंदुओं की दुकानों से
कुछ भी मत खरीदो
आयात - निर्यात की
ए, बी सी, डी, भी मत कुरेदो स
चिंतन मनन करने के बाद
बात मन को भा गई
सारी खघ्रीद दारी
सनातनी हिंदुओं से ही करूँगा स
अपने खून पसीने की कमाई
सनातनी हिंदुओं की
दुकानों में ही भरूँगा स
यही सोच कर
बाजार की ओर चला
चौराहे पर
अब्दुल हज्जाम की दुकान ने छला स
दूर दूर तक
शर्मा, वर्मा, गुप्ता चतुर्वेदी
किसी भी सनातनी हिंदू की
नाई की दुकान
नजर नहीं आई ।
अब हजामत कहाँ बनवा ऊँ ?
सोच बाजार घूम आऊँ
फलों के बाजार में
और सब्जी मंडी में
कादिर, रहमान, अहसान अली आदि
चिल्ला रहे थे
सब्जी और फलों की
खूबियों का ढोल पीट
जबर्दस्ती बेच रहे थे स
कोई भी सनातनी हिंदू
नजर नहीं आ रहा था
तेज आवाज में केवल
गैर सनातनी ही
चिल्ला रहा था।
मेरा सिर चकरा रहा था ।
दूसरी ओर बढ़ई की दुकान में
अल्लाह मेहर
सोफे और कुर्सियों पर
रन्दा लगा रहा था
आगे मोटर कार बस ट्रक
ट्रैक्टर के बॉडी मेकर
रफीक, शरीफ, मुस्ताक
इनको नव आकार देकर
चमका रहे थे
जाने माने मिस्त्री अलादीन
वर्षों से बिगड़ी मशीन
सुधार रहे थे
हजरत अली
ठोक पीट कर रहे थे
दूसरी ओर जाफर अली
बैल्डिंग कर
बॉडी को मजबूती दे रहे थे ।
सामने की दुकान में
नसीर खाँ
कोट, पेन्ट, जैकेट, अचकन के
नामी ग्रामी टेलर मास्टर
गले में इंच टेप, हाथ में कैंची
कच कच करती, कपड़े कटर स
साइकिल से लेकर कार, स्कूटर
बस, ट्रक का पहिया
सब में पंचर लगाते मिले
मखघ्मूल भईया स
ए, सी, मोटर हो या कूलर पंखा
मिस्त्री नाजिर दूर कर रहे थे
इनकी गड़बड़ी, सारी शंका स
इनके ही नाम का
पूरे बाजार में
बज रहा था डंका स
सभी मैकेनिकल, दस्तकारी
दुकानों पर घूमा
बाजार का कोना कोना चूमा
पर कहीं भी
सनातनी हिंदुओं की
शर्मा , वर्मा, राजपूतों की
दस्तकारी की दुकान
नजर नहीं आई
यहाँ तक की रिक्शा भी
असलम की नजर आई स
माना ये सारे कामगार
सनातनी हिंदू नहीं हैं
पर इनका राष्ट्रीय योगदान
किसी सनातनी हिंदू से
कम भी नहीं है स
जात पात, धर्म- भेद भाव
मन से ठुकरा ओ
सब से खरीदो सामान
मत करो भूल कर भी
किसी का अपमान
सभी को दिल से अपनाओ
समाज के साथ साथ
देश को भी
मजबूत बनाओ

कथा मंच

मौन

प्रो. तारु एस. पवार
केसरगोड, केरल
मोबाईल - 9844374432
ईमेल
tarusp@cukerala.ac.in

कमरे के अंदर अचानक ही किसी झगड़े की आवाज सुनाई पड़ी। मुझे महसूस हुआ कि आवाज मेरे बराबर के कमरे अर्थात् प्रोफेसर विकास के कमरे की ओर से आ रही है। मैंने चौंककर अपनी सीट छोड़ी और तुरंत अपने कमरे से बाहर निकल आया। सामने नेहा ठाकुर जोकि प्रोफेसर विकास के दिशा निर्देशन में अपना शोध कार्य कर रही थी, वह जोर-जोर से विकास जी पर चिल्ला रही थी। शाम का समय था, विश्वविद्यालय का परिसर लगभग खाली होने लगा था। ऐसे में इस दृश्य का साक्षी केवल मैं ही नहीं था, घर जाने की जल्दी में बाहर खड़े दो-तीन और प्रोफेसर भी थे। मुझे सामने से आता देख विकास जी लगभग असहजता की मुद्रा में आ गए थे। उनकी यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी, क्यूंकि नेहा ठाकुर शोधार्थी होने के साथ-साथ एक स्त्री भी थी किंतु मैं जितना समझ पा रहा था, नेहा गुस्से से भरी हुई थी।

'आप केवल मेरे शोध निर्देशक हैं, मेरे गुरु नहीं। इसी कारण से अब तक आपका सम्मान था। अब जब मैं महसूस कर रही हूं कि आप अपने पथ से भ्रष्ट हो चले हैं। ऐसे में आप मुझे क्या ही निर्देश दे पाएंगे।' नेहा लगभग बिना भयभीत हुए बोलती चली गई।

'तुम अपनी सीमाओं को पार कर रही हो। एक शिक्षक का जरा भी सम्मान नहीं तुम्हें? तुम अब यहां से सीधे अपने घर जाओगी। तुम्हारे जैसे शोधार्थियों की यहां कोई आवश्यकता नहीं है।'

प्रोफेसर विकास ने मेरी मौजूदगी के चलते अपने सम्मान की रक्षा करते हुए कहा था।

बहस को बढ़ते हुए देख मैंने जैसे ही उन दोनों के बीच में पड़ने का प्रयास किया ही था कि तुरंत नेहा ने अपनी आंखों को तरेर कर गुस्से की सीमाओं के भीतर रहते हुए अजीब भाव से प्रोफेसर विकास की ओर कदम बढ़ाते हुए, लगभग उनके करीब आकर एक चुनौतीपूर्ण ढंग से अपनी बात रखते हुए कहा-'सर पीएचडी तो मैं इसी विभाग से पूरी करूंगी, वह भी आपकी आंखों के सामने। मैं आपसे कहती हूं.. आप जो चाहे कर लें।'

'तुम... तुम... तुम... अपने आप को समझती क्या हो?' प्रोफेसर विकास

लगभग अपने-आपे को संभालते हुए बोले।

'विकास सर... सर ...सर...।' मैंने लगभग रोकने का प्रयास किया था। मेरी जगह कोई भी होता यही करता। नेहा तब तक अपने चुनौतीपूर्ण वक्तव्य को पूरा करते हुए, पैर पटककर, मुड़कर वहां से चली गई थी।

उसके बाहर आते ही पहले से ही बाहर खड़े अन्य प्राध्यापक गणों में से किसी एक ने नेहा से पूछा- "नेहा क्या हुआ? आप ठीक है ?" किंतु नेहा ने इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा और सीधे वहां से आगे बढ़ गई।

उधर मैं प्रोफेसर विकास को शांत करने के अपने प्रयास में लग गया था। इतने में बाहर मौजूद अन्य सभी प्रोफेसरों ने भी विकास जी के कमरे के भीतर आकर समाधान करने का औपचारिक सा प्रयास किया और फिर धीरे-धीरे वहां से निकल गए।

प्रोफेसर विकास अपने माथे पर हाथ धरे तथा अपने बाएं हाथ की उंगलियों को अपने माथे पर फिराते हुए मेरी ओर देखकर बोले-'देख रहे हैं ना सुभाष सर, आजकल के शोधार्थियों को, जरा काम क्या पूछा, अपनी सीमाएं भूल जाते हैं। इस लड़की ने पिछले दो सालों में एक भी सत्रांत प्रगति रिपोर्ट नहीं दिया और आज पूछने पर हंगामा खड़ा कर दिया, कहती है-'प्रगति रिपोर्ट जैसा कुछ भी नहीं होता। आप तो मुझे परेशान करने का मौका ढूंढते रहते हैं सर।' अब आप देखना...सर! मैं भी चुप नहीं बैठूंगा।'

'आप अभी शांत हो जाइए सर...।' मैं उनके कंधे पर हाथ रखकर केवल इतना ही बोल पाया था क्योंकि इससे ज्यादा मैं बोल भी नहीं सकता था या बोलना नहीं चाहता था। इसे मेरी या एक शिक्षक की मजबूरी ही समझ लीजिए। खासतौर पर तब, जब किसी महिला शोधार्थी का मसला हो, कोई एक-दूसरे के बीच में पड़ना नहीं चाहता।

घर लौटते समय विभाग की घटना का दृश्य मेरी आंखों के सामने तैर रहा था। मैं एक शिक्षक होने के नाते प्रोफेसर विकास के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित था। डॉ. विकास आंबेडकर की विचार-धारा को मानने वाले प्रोफेसर थे। संवि-धान पर उन्हें अटूट विश्वास था। इसलिए वे हमेशा नियमों का पालन करने की ओर जोर देते थे।

आज की घटना ने मुझे अपने शोधार्थी जीवन की स्मृतियों की ओर धकेल दिया था। वहां भी ना तो मैं स्वयं के लिए लड़ सका था और ना ही अपने सीनियर श्रीधर को सहानुभूति के दो शब्द तक बोल पाया था। सवर्ण शोधार्थी हो या शिक्षक, हमेशा दलित को दबाने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

आज एक शोधार्थी, प्रोफेसर विकास के सामने अपने सवर्ण होने का दंभ दिखा रही थी। दलित होने के कारण जैसा अपमान विकास जी झेल रहे हैं। उन्हीं की भांति ही श्रीधर अपने शोध निर्देशक द्वारा जातीय शोषण को झेल रहे थे। वह अलग बात है कि एक दलित होने के कारण मैं स्वयं कितनी ही बार अपमानित होता रहा हूं।

जब हम छोटा महाबलेश्वर विश्व-विद्यालय में शोधार्थी थे, तब हुसैन शोधार्थी होने के साथ ही उसी विश्वविद्यालय के किसी महाविद्यालय में अतिथि शिक्षक के रूप में भी कार्यरत था। एक दिन उसी ने अपने सहपाठी श्रीधर की प्रशंसा करते हुए विभाग के एक होनहार शोधार्थी के रूप में उसे हम सबसे मिलवाया था।

श्रीधर उत्तर कर्नाटक के दलित समुदाय से आता था। जैसा कि श्रीधर एक बहुत मेहनती छात्र था और अपनी काबिलियत के दम पर यहाँ तक पहुंचा था। निस्संदेह उसके संघर्ष भी कम ना थे। उसने सोचा था कि शायद यह पीएचडी उसकी नैया पार कराएगी परंतु वह क्या ही जानता था कि पीएच.डी. में भी उसके दुखों और संघर्षों की निरंतरता बनी रहेगी तथा उसके हिस्से में आएगा प्रोफेसर इरेश मठ जोकि उसका शोध निर्देशक था या यूँ कहाँ जाए जिसे मानव बनने के लिए स्वयं किसी के निर्देशन की आवश्यकता थी। जिसने अपनी प्राप्त की हुई शिक्षा को शर्मसार कर दिया था। उसका प्राप्त किया हुआ ज्ञान कहीं मुँह छिपाएं खड़ा था। एक पढ़ा-लिखा अज्ञानी, एक सचमुच के अज्ञानी से ज्यादा खतरनाक होता है। प्रोफेसर इरेश मठ इसका अच्छा उदाहरण था।

कहते हैं जिस घर का मुखिया ही खराब हो उस घर की प्रगति में स्वत: ही अवरोध उत्पन्न हो जाता है। ऐसे में विभाग की बागडोर प्रोफेसर इरेश मठ के ही हाथों में थी। हिंदी विभाग कहने को तो विद्या का केंद्र था किंतु अगर उसे सवर्णो का अड्डा कहा जाए तो भी गलत ना होगा। कहते हैं ना जो अधिक ताकतवर होता है, वह कमजोर को दबाता ही है। हालांकि यह दबना-दबाना विश्वविद्यालयों में शोभा नहीं देता लेकिन यह उस विभाग की सच्ची तस्वीर थी जो विभागीय चेयरमैन इरेश मठ के दिशा निर्देशन में चल रहा था।

प्रोफेसर साहब छुआछूत तथा जातिगत भेदभाव में पक्का विश्वास

रखते तथा विभाग के अन्य सवर्ण शिक्षक उनके विश्वास पर विश्वास रखते थे। जिसका नतीजा यह होता कि विभाग में शिक्षकों के कई गुट तैयार हो जाते तथा आपसी गुटबाजी चलती ही रहती। कुल मिलाकर विभाग का माहौल नकारात्मकता से भरा हुआ था जो वहां पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं पर भी असर डालता था।

एक दिन हम सभी हुसैन के साथ प्रोफेसर इरेश मठ का इंतजार कर रहे थे। इसका कारण भी बहुत खास था। श्रीधर की नई किताब आई थी। नई इसलिए कि पहले भी उसकी कई और किताबें आ चुकी थी। उस दिन वह बहुत उत्साहित था। उसे लगा कि वह अपने गाइड को अपनी किताब की पहली प्रति भेंट करेगा और बदले में उससे अपने भविष्य के प्रति प्रोत्साहन और आशीर्वाद अर्जित करेगा।

प्रोफेसर इरेश मठ का स्कूटर हमेशा एक अजीब-सी आवाज निकालता था। जिससे ज्यादातर लोगों को तुरंत पता चल जाता था कि प्रोफेसर साहब विश्वविद्यालय में पदार्पण कर चुके हैं। उस दिन मैंने ही एकदम से उनके खटारा स्कूटर की आवाज सुनकर कहा था। 'आ गया यमराज' और साथ में खड़े सभी लोग खिल-खिलाकर हंस पड़े थे। खैर! खिल-खिलाहटों को तुरंत बंद कर देने का अवसर था क्योंकि उसकी मौजूदगी में हंसना, ना काबिले बर्दाश्त, की श्रेणी में आता था। सब के सब चुपचाप उसकी राह तकने लगे। तभी प्रोफेसर इरेश मठ सामने से अपने कक्ष की ओर आते दिखाई पड़े। उनके समीप आते ही हुसेन ने बड़ी प्रसन्नता का भाव लिए प्रोफेसर साहब को उनके शोधार्थी श्रीधर की नई किताब आने की सूचना दी। इतने में स्वयं श्रीधर अपने गाइड की ओर अपनी किताब लेकर आगे बढ़ा और कहने लगा- 'सर यह मेरी पुस्तक जो कि कन्नड़ कविताओं का संकलन है 'नग अन्द्र ह्यॉंग नगली' ('हँस कहे तो कैसे हँसू') आपको भेंट करने का इच्छुक हूँ। कृपया करके इसे स्वीकार करें। सर मेरा यह सौभाग्य होगा'

इतना बोलते हुए श्रीधर ने अपनी किताब प्रोफेसर के समक्ष बढ़ा दी। ऐसा बोलते हुए श्रीधर के चेहरे पर मिश्रित भाव थे। खुशी से उसका चेहरा दमक रहा था किंतु एक अजीब से भय ने मानो! उसकी आंखों की पलकों को ऊपर उठने ही ना दिया था।

'क्या-क्या! शीर्षक बताया तुमने?' 'नग अन्द्र ह्यांग नगली' ('हंस कहे तो कैसे हँसू')'

'जाओ पहले एक और किताब लिखो तथा उसका शीर्षक दो-'नग अन्द्र हिंग नगू' ('हँस कहे तो ऐसे हँसो')'

इतना कहकर तथा व्यंग्य से 'हाऽ हाऽऽ हाऽऽऽ' कर हंसते हुए वह अपने कक्ष के भीतर चला गया।

उसके लिए यह कोई नई बात बिल्कुल नहीं थी क्योंकि दलित छात्रों को सताना तथा कदम-कदम पर उनको अपमानित कर, नीचा दिखाना प्रोफेसर इरेश मठ के लिए बहुत ही सहज था। इसका असर यह होता था कि कुछ दलित छात्र डर की वजह से दिन-रात उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगे रहते और विभाग में उनके लिए पोस्टमैन के रूप में तथा घर में नौकर की तरह काम किया करते थे।

एक बार मैं स्वयं प्रोफेसर इरेश मठ का शिकार बना था, क्योंकि मैं भी एक दलित समुदाय से ही संबंधित हूं। ऐसे में मुझे सताने का अवसर उसे उस दिन मिल ही गया था, जब मैं उससे अपनी मासिक प्रगति रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करवाने गया था। जैसे ही मैंने मेरी रिपोर्ट उसके हाथ में दी। पहले तो उसने उस रिपोर्ट को नजर भर देखा और अगले ही क्षण अपने दाएं हाथ से अपनी कुर्सी के एकदम बगल में रखे कूड़ेदान में फेंक दिया।

आज उसके लिए एक साथ दो शिकार थे। एक तो मेरे गाइड जो कि स्वयं दलित थे और दूसरा मैं उसके सामने था। एक तीर से दो शिकार की इस प्रक्रिया के दौरान प्रोफेसर इरेश मठ ने मेरी ओर बिल्कुल ना देखा। जीवन की विपरीत परिस्थितियों ने मुझे ढीठ बना दिया था। अपनी इसी ढीठता का परिचय देते हुए मैं भी वहाँ खड़ा रहा। चूंकि मेरे गाइड पहले से ही प्रोफेसर इरेश मठ की हरकतों को झेल चुके थे। बदकिस्मती से एक समय में वे स्वयं इनके शिष्य रह चुके थे। ऐसे में उन्होंने एक जैसी दो रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर करके मुझे पहले ही दे दिये थे। जिसमें से एक तो इरेश मठ

उस दिन जब मैंने श्रीधर को मुस्कुराते हुए देख तो मैं उससे पूछ बैठा, 'क्या बात है सर? आपकी मुस्कुराहट बहुत कुछ कह रही है। क्या मैं सही समझ रहा हूं?'

इतना सुनकर श्रीधर की मुस्कुराहट हंसी में तब्दील हो गई थी। वह बोला- 'तुम सही समझ रहे हो दोस्त, लेकिन सच कहूं तो मेरी मुस्कुराहट के साथ-साथ मेरे चेहरे पर छुपे भय को भांपने में तुम जरा चूक गए।'

पहले ही कूड़ेदान को नजर कर चुके थे। दूसरी मेरी जेब में थी। जिसे निकालकर मैंने जैसे ही प्रोफेसर इरेश मठ के सामने रखकर यह पूछा कि- 'सर, अगर कहीं कोई गलती हो गई है तो कृपया करके बताइए, मैं ठीक करवाके वापस ले आऊंगा।'

प्रोफेसर इरेश मठ ने मेरी ओर घूर कर देखा और कहा-'गलती मुझसे नहीं, अपने गाइड से सही कराइए जिन्होंने तुम्हें यहां भेजा है।'

थोड़ी देर बाद फिर कहा-'गाइड इसी काम के लिए ही तो होते हैं' और इतना कहकर उसने अपना मुँह मेरी ओर से वापस मोड़ लिया।

अपनी सहनशीलता को हथियार बनाते हुए मैंने हिम्मत करके प्रति उत्तर दिया-'मेरे गाइड के हस्ताक्षर स्वयं इस बात का प्रमाण है की रिपोर्ट सही है।'

मेरा इतना कहना ही था कि प्रो. इरेश मठ तिलमिला उठे और तुरंत मुझे अपने कमरे से बाहर निकाल दिया। उनके इस व्यवहार से मैं बहुत डर गया था।

श्रीधर इस बार केवल डरा ही नहीं बल्कि वह तो मानो! संघर्षों और दु:खों की निरंतरता से हार ही गया। उस दिन जब मैंने श्रीधर को मुस्कुराते हुए देखा तो मैं उससे पूछ बैठा-'क्या बात है सर? आपकी मुस्कुराहट बहुत कुछ कह रही है। क्या मैं सही समझ रहा हूँ?'

इतना सुनकर श्रीधर की मुस्कुराहट हँसी में तब्दील हो गई थी। वह बोला- 'तुम सही समझ रहे हो दोस्त, लेकिन सच कहूं तो मेरी मुस्कुराहट के साथ-साथ मेरे चेहरे पर छुपे भय को भांपने में तुम जरा चूक गए। खैर! काम लगभग समाप्त हो गया है, एक बार गाइड पूरे कार्य को देख लें, तब जल्दी ही पीएच.डी. जमा कर तुम लोगों से विदा लूंगा।'

आज उसके लिए एक-साथ दो शिकार थे। एक तो मेरे गाइड जो की स्वयं दलित थे और दूसरा मैं उसके सामने था। एक तीर से दो शिकार की इस प्रक्रिया के दौरान प्रोफेसर इरेश मठ ने मेरी ओर बिल्कुल ना देखा। जीवन की विपरीत परिस्थितियों ने मुझे ढीठ बना दिया था। अपनी इसी ढीठता का परिचय देते हुए मैं भी वहां खड़ा रहा।

'जरूर सर, ऑल द वेरी बेस्ट' इतना कहकर मैंने श्रीधर को आगे बढ़ने का रास्ता दिया।

श्रीधर अपने दोनों हाथों में अपने पाँच साल की मेहनत को ऐसे लिए जा रहा था, मानो! इस संपत्ति के बदले में उसको पूरा जहाँ मिलने वाला हो। जहाँ तो नहीं मिला लेकिन अपमान इतना मिला कि उसका इस जहाँ से विश्वास ही उठ गया था। उसकी मेहनत से किए गए शोध कार्य के एक भी पन्ने को पलटने की जहमत उठाए बिना प्रोफेसर इरेश मठ ने पूरी की पूरी फाइल को अपने कक्ष की खिड़की से बाहर फेंक दिया। श्रीधर पहले तो हकबका गया, बाद में वह पागलों की भांति सीढ़ियों से नीचे की ओर भागा क्योंकि उसके प्रोफेसर का कक्ष विश्व-विद्यालय की पहली मंजिल पर था। और उसी के नीचे भू-तल पर भारतीय स्टेट बैंक था। बैंक के द्वार को लगकर एक पेड़ था। उसी की सीध में ऊपर पहली मंजिल पर प्रोफेसर इरेश मठ के कमरे की खिड़की थी। विश्वविद्यालय में अपना-अपना दाखिला पक्का करने के लिए नये विद्यार्थियों की भीड़ लगी हुई थी, साथ में अन्य ग्राहकों का भी तांता लगा हुआ था। इसी भीड़ के बीच श्रीधर जमीन पर पड़े अपने शोध के पन्नों को एक-एक करके चुन रहा था। बहुत सारे पन्ने प्रोफेसर इरेश मठ की खिड़की के बाहर लगे पेड़ पर गिरकर जगह-जगह अटक गए थे। ऊपर अटके हुए उन पन्नों को वह ताकता और हवा के झोंकों का आह्वान करता। ऐसे में कोई पन्ना हवा से उड़कर जैसे ही नीचे की ओर आता तो वह दौड़ता और उसे पकड़ने की कोशिश करता। और फिर हर प्राप्त हुए पन्ने को पकड़कर अपनी छाती से लगाता। मेरे लिए यह दृश्य अपार करुणा से भरा हुआ था लेकिन वहाँ खड़ी उस भीड़ के लिए यह मौन रुदन, परिहास का दृश्य था।

धीरे-धीरे यह रुदन उसके चेहरे से टपकने लगा, श्रीधर की आँखें आँसुओं से लबालब भरी थी। उसकी मेहनत से लिखा एक-एक पन्ना उसे एकदम खाली प्रतीत हो रहा था। जो पन्ने उसके हाथ ना लगे थे उनके प्रति भी मोह जैसे खत्म होता जा रहा था। इस मेहनत ने उसके पाँच साल ले लिए थे। अपने गाइड के बिना किसी सुझाव और निर्देशन के अभाव के चलते वह स्वयं को लाचार महसूस कर रहा था। आगे का रास्ता मानो! प्रोफेसर इरेश मठ ने एक संवादहीन दीवार के पीछे छुपा दिया था। जाहिर है बिना आपसी वार्तालाप के कोई रास्ता नहीं निकलता और प्रोफेसर इरेश मठ ने श्रीधर को किसी भी संवाद के लिए कभी कोई अवसर देना जरूरी नहीं समझा था। ऐसे में भविष्य में प्रोफेसर इरेश मठ के साथ किसी

भी प्रकार के संवाद की अपेक्षा करना उसे बेमानी-सा प्रतीत होने लगा था।

उसके कुछ साथी उस वक्त उसके साथ बिखरे पन्नों को समेटने का कार्य कर रहे थे। जब कुछ भी समेटने को ना बचा तब उन्होंने अपने साथी के टूटे हुए मनोबल को पुनः जोड़ने का प्रयास करना शुरू कर दिया।

शाम होने तक यह खबर धीरे-धीरे पूरे होस्टल में आग की तरह फैल गई। फैल तो गई लेकिन यह आग व्यवस्था के प्रति विद्यार्थियों के अंदर बसे भय की गहनता के कारण किसी के भी हृदय में चिंगारी लगाकर प्रतिरोध की भावना का प्रस्फुटन करने में असफल रही।

विश्वविद्यालय में होने वाली हड़तालों के केंद्र में कभी भी किसी दलित की व्यथा नहीं रही थी। इससे पहले भी न जाने कितनी ही ऐसी घटनाओं का साक्षी बेशक यह विश्वविद्यालय रहा था, लेकिन सवर्णों के अधिपत्य के कारण दीवारों के भी कान होते हैं लेकिन वे बोल नहीं सकती की तर्ज पर यह विश्वविद्यालय बरसों से मौन खड़ा था।

उस घटना ने श्रीधर को अवसाद की अवस्था में पहुंचा दिया था। अब वह पहले की तरह लोगों से ज्यादा मिलता-जुलता नहीं था, यहां तक कि उसने बोलना तक बंद कर दिया था। एक उदासी उसे हमेशा घेरे हुए रखती थी। धीरे-धीरे अवसाद निराशा की ओर उन्मुख होने पर जोर देने लगा फिर हुआ यूं कि असहनीय पीड़ा और बेचैनी ने उसे सहज ना रहने दिया और एक दिन वह किसी को भी बिना बताए पीएचडी छोड़कर चला गया था। गनीमत यह थी कि दुनिया छोड़कर नहीं गया था।

उसके बाद कई लोगों से मैंने उसके विषय में पूछताछ की थी। एक दिन किसी से पूछताछ के दौरान पता चला कि उसने अपने गांव में मजदूरी करना शुरू कर दिया है। इतना सुनकर मुझे आभास हुआ और लगा जैसे कि यह विश्वविद्यालय एक हत्यारा है, जिसने श्रीधर जैसी ना जाने कितनी ही दलित प्रतिभाओं की हत्याएं पहले भी की होंगी। ऐसा भी लगा जैसे हम एक-एक कर अपनी अपनी हत्याओं के लिए अपनी अपनी बारी का इंतजार कर रहे हैं। जीवन को नष्ट करने वाले इस नरभक्षी परिवेश के चंगुल से मुक्त हो जाना आसान नहीं था।

मैं भी वहां से आजाद जरूर हुआ था लेकिन यह आजादी आज तक मुझे इतना परिपक्व तथा निडर नहीं बना सकी जिससे कि मैं किसी भी प्रकार के तथा किसी के भी साथ होने वाले छल कपट के विरोध में उनका साथ दे पाऊं, लेकिन आज सवर्ण व्यवस्था के खिलाफ प्रोफेसर विकास की आवाज मुझे अपनी दबी हुई आवाज की भांति लगी। उसकी आवाज में मुझे अपने मौन की मुक्ति का अहसास हुआ। आज मैं एक अजीब-सी संतुष्टि के भाव को महसूस कर रहा था।□

विचार का वितान

डॉ. आंबेडकर ने कहा था...

स्वतंत्रता रहस्य है साहस का और साहस व्यक्तियों द्वारा एक दल में बंधा जाने से उत्पन्न होता है।

जेनिंग्स ने कहा था...

यदि विपक्ष नहीं है तो लोकतंत्र भी नहीं है। महामहिम का विपक्ष कोई निरर्थक उक्ति नहीं होती। महामहिम को विपक्ष भी चाहिए तथा सरकार भी।

बाल्फोर ने कहा था...

यदि हमें उस दीर्घकालीन प्रक्रिया के सही आधार को खोजना है जिसमें मध्यकालीन राजतंत्र को आधुनिक लोकतंत्र में परिणत किया है और जिसके द्वारा अत्यधिक परिवर्तन हुआ है व अतिअल्प विनाश हुआ है, तो हमें प्रतिभा और सिद्धांत के स्थान पर स्वभाव और चरित्र का अध्ययन करना ही होगा।

कथा मंच

नचनी काकी

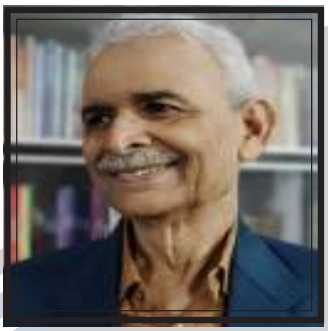

डॉ. प्रहलाद चंद्र दास
बोकारो, झारखंड
मो0- 9431743074

देहात का रास्ता और उस पर एक सजी-संवरी युवती। मुँह में पान, उस जमाने में भी पैरों में सैंडल, कमर तक लटकती दो चोटियाँ, चोटियों पर लाल-पीले फीतों से बने बड़े-बड़े फूल खोंसे हुए और ऊपर से खुला माथा। अमूमन, नचनियों की यही वेश-भूषा होती थी उन दिनों। नचनी काकी, लेकिन ऐसी नहीं थी। बनाव-शृंगार उसके भी होते थे, पर साधारण और वह माथे पर घूँघट भी रखती थी। इसलिए कभी-कभी उसे पहचानने में भूल हो जाती थी।

रसिक काकू लेकिन ऐसे नहीं थे। वे सर से पैर तक 'रसिक' थे। रसिक क्या, एकदम से 'रसिक-नागर'! गर्दन तक लटकते लंबे-लंबे बाल, जिन्हें हम 'जुल्फी' कहते थे, और जो 'मादल' पीटने के समय सर धुनते हुए रसिक काकू के मुख-मंडल पर उसी ताल और लय में उठते-गिरते थे; पूरी बाँह का सफेद झक-झक करता सिल्कन कुरता जिसमें सोने की चेन और बटन होते थे; जमीन को चूमती हुई धोती, जिसका एक किनारा कुरते की जेब में खोंसा हुआ होता और पैरों में मच-मच करते जूते।

रसिक काकू अपनी जेब में एक छोटी कंघी जरूर रखते और समय-समय पर उससे अपने बाल संवारते रहते। उनकी पहचान में कोई भूल नहीं होती। कोई भी कह देता–'यह आदमी 'रसिक' हैं।'

रसिक काकू का असली नाम लाल सिंह था और हमलोग उन्हें लाल काकू कह कर पुकारते थे। लेकिन, जब से उन्होंने नचनी काकी को 'रख' लिया तब से वे 'रसिक' के रूप में विख्यात हो गए थे और हमलोग उन्हें 'लाल काकू' कहना छोड़ कर 'रसिक काकू' कहने लगे थे।

इन्हीं नचनी काकी और रसिक काकू को अपने पूरे दल-बल और साजो-सामान के साथ उस दिन बाहर जाते देखा तो टोक दिया, 'क्यों काकू, सूरज 'चाक' पर जा रहा है (अस्त होने वाला है) और आप लोग इस वक्त बाहर जा रहे हैं?'

'पूछो अपनी नचनी काकी से!' रसिक काकू ने इशारा किया और खुद कंघी निकालकर अपने बाल सवांरने लगे।

'ज्यादा दूर नहीं, यहीं डोमन पुर

जा रहे हैं, नुनुवां (बबुआ)! चलो न, नाच देख कर आवोगे!' नचनी काकी ने कहा, 'लेकिन, तुम्हारे काकू रूठ (रूस) गए हैं। बेगारी; जाना ही नहीं चाहते थे। मैंने कहा कि गरीब-गरीबान की खुशी यों ही क्यों मर जाएगी? अरे, वही लक्ष्मण बाउरी के घर लड़का हुआ है, कितनी चिरौरी-विनती के बाद। आज छठी है। कह रहा था—बेटे के जन्म पर नचनी का नाच करने का मंसूबा किया था। तुम चाहो तो पूरा हो सकता है। पचास रुपये लाया हूं।'

'और नाचनेवालियां तो बड़े-बड़ों के यहां बेगार कर आती हैं। तुम्हारे काकू के 'परताप' से किसी 'बड़े' की हिम्मत नहीं हुई मुझे बेगार नचवाने की। वह गरीब भी पचास रुपये दे रहा था। लेकिन, मैंने मना कर दिया। कहा, 'रख ले, मौगी (पत्नी) की दवा-दारू करना। तुम्हारे यहां नाच होगा। अब जाओ! अब, वचन दे दिया है तो उसे निभाना भी है। सो इन्हें मनाते-मनाते शाम हो गयी, तब कहीं जा कर ये राजी हुए हैं।'

साजिंदे रुक गए थे। एक की पीठ से कपड़े की गांठ में बंधा हारमोनियम लटक रहा था। दूसरे की पीठ से तबला। एक तीसरा व्यक्ति मादल लटकाए हुए था। दो-तीन व्यक्ति और खाली हाथ थे। नचनी काकी ने अब उन्हें मुड़कर देखा, कहा—'खड़े क्यों हो तुम लोग? चलते रहो। मैं अभी आई।'

लोग सिटपिटाए-से आगे बढ़ने लगे। मेरी आंखें उसके तेज-दीप्त मुखमंडल पर टिकी थीं। अपनी तरफ गौर से देखते पाकर उसने चुटकी ली, 'बहुत सुंदर लग रही हूँ न? अरे, यही सुंदरता तो मेरी दुश्मन बन गयी। खैर, अब तुम्हारा चानस (चांस) तो गया नुनुआं। तुम्हारे काकू ने हाथ मार दिया।' और वह खिलखिला कर हंस पड़ी। मेरा मुँह लटक गया।

'तुम्हारी आदत नहीं छूटेगी। बच्चों से भी मजाक करने लगती हो?' रसिक काकू ने उसका हाथ पकड़ा और खींच कर साथ कर लिया। मेरी ओर मुड़ कर बोले, 'कुछ मन में न लाना नुनुआं!'

तालाब की ऊंची मेड़ पर जाते हुए उन्हें, मैं देखता रह गया। ऊपर वे जितने छोटे लग रहे थे, नीचे पानी में उतने ही बड़े लग रहे थे।

क्या रूप, क्या तेज! नचनी काकी के इसी रूप और तेज के कारण लाल काकू, रसिक काकू बन कर रह गए थे।

नचनी काकी की कहानी भी अजीब है। कहते हैं कि नचनी काकी इधर की लड़की नहीं थी। दूर, नदी-पार (दामोदर नदी के उस पार) के किसी डोम की लड़की थी। गरीबी में जन्मी, पली और बढ़ी। घर में खाने के लाले पड़ते। वय: संधि की अवस्था में ही वह हादसा हुआ था। उस गांव में उस समय की बहुचर्चित नचनी 'चपला' का नाच होने वाला था। वह भी नाच देखने गयी थी। उसने देखा, चारों ओर से चपला पर नोटों की बारिश हो रही है। कोई स्वयं जाकर उसकी ब्लाउज में नोट खोंस आता है। कोई उसे बुला कर पैसे देता है। भरा हुआ आसर, झरता हुआ रुपया! आंख, होंठ और पेट ने मिल कर एक निर्णय लिया, और नाच जब खत्म हुआ तो वह रसिक बाबू से जा मिली। बोली, 'मैं भी नचनी बनूंगी।' रसिक बाबू ने एक बार उसकी तरफ तांका। भौंचक रह गया। इतना रूप?

चपला का शरीर भी थक रहा था। उसने सोचा, अच्छा होगा एक सहायिका हो जाएगी। एकाध घंटे तो आसर संभालेगी। लोग तो इसका रूप ही देखते रह जायेंगे।

'गला-वला भी है?' रसिक बाबू ने पूछा था।

तब उसने भवप्रीता का एक प्रसिद्ध झूमर गाकर सुना दिया जो कि वह अपने बापू को गाते सुन कर सीख गयी थी—

'शक्तिशेले जबे पड़िला लखन,
कान्देन श्रीराम राजीव लोचन,
भासेन नयन नीरे...;
उठ-उठ बीर, धर धनु तीर
दश शिर ब'धि बारे।'

चपला ने एक बार रसिक बाबू को देखा था और रसिक बाबू ने एक बार

लोग सिटपिटाए-से आगे बढ़ने लगे। मेरी आंखें उसके तेज-दीप्त मुखमंडल पर टिकी थीं। अपनी तरफ गौर से देखते पा कर उसने चुटकी ली, 'बहुत सुंदर लग रही हूं न? अरे, यही सुंदरता तो मेरी दुश्मन बन गयी। खैर, अब तुम्हारा चानस ; चांसद्ध तो गया नुनुआं। तुम्हारे काकू ने हाथ मार दिया।' और वह खिलखिला कर हंस पड़ी। मेरा मुंह लटक गया। 'तुम्हारी आदत नहीं छूटेगी। बच्चों से भी मजाक करने लगती हो?' रसिक काकू ने उसका हाथ पकड़ा और खींच कर साथ कर लिया। मेरी ओर मुड़ कर बोले, 'कुछ मन में न लाना नुनुआं!'

चपला को। दोनों अभिभूत हो गए थे–यह तो हीरा है!

'हीरा नहीं, पारस है' चपला ने कहा था, 'इससे बहुत सोना बनेगा। थोड़ी-सी मिहनत करनी पड़ेगी।' फिर उसकी और मुखातिब होकर पूछा था, 'तैयार हो कर आई हो?'

'तैयार क्या होना है? तीन बार शादी हो कर छूट गयी। अपने ही खाने का नहीं जुटा पते हैं लोग। जैसे ही शरीर की गर्मी उतरती है, पेट पर लात मारने लगते हैं। बाप की बोझ बनकर रह रही हूँ। माँ भी सौतेली है। रात-दिन गालियाँ देती रहती है–एक हिस्सा डकार जाती हूँ, इसलिए। ऊपर से, गाँव के बाबू लोगों के छोकरे जहाँ पाते हैं...। इससे तो अच्छा है, नाचूंगी, गाऊंगी, कमाउंगी, खाऊंगी।

चपला हँसी। अनुभव की हँसी थी। बोली–'इतना आसन समझती हो?'

'आसन हो या मुश्किल, अब आप ही लोगों का आसरा है। मैं लौटकर नहीं जाऊंगी।'

'ठीक है, मत जाओ। लेकिन, तुम्हारा नाम बदलना पड़ेगा। वैसे भी घर का नाम नाच में नहीं चलता है। और चूंकि तुम बिजली की तरह चमकती हो, इसलिए तुम्हारा नाम होगा–बिजली!' रसिक बाबू ने कहा।

परंतु, उसने उस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उल्टे पूछा, 'कुछ खाने को मिलेगा?'

'हां-हां, क्यों नहीं! चपला, इसे ले जाकर खाना खिलाओ।' रसिक बाबू ने कहा तो कृतज्ञता भरी नजरों से उन्हें देखती हुई वह चपला के साथ अंदर चली गयी थी।

उस रात वह लौटकर नहीं आई थी। सबेरे बहुत हंगामा हुआ था। हालांकि, बाप मन-ही-मन खुश हो रहा था कि चलो, एक बला टली। लेकिन, लोक-लाज के लिए शोर-शराबा किया। यहाँ खोजा, वहां खोजा। सौतेली माँ भी रोई। फिर खबर उड़ी कि नचनी वाले उसे भगा कर ले गए हैं। तमाशा बंद हो गया। बाप आश्वस्त हो गया। बेटी एक ठौर पर पहुँच गयी थी। जी हाँ, रसिक बाबू के ठौर पर!

रसिक बाबू देवता आदमी थे। हरदम उसे बेटी की तरह रक्खा। चपला भी कम थी क्या? दोनों उस पर बड़ी मिहनत करते। देर गयी रात तक उसे नाच सिखाते। गाने के गुर बताते। एक समय था वह, जब आस-पास के इलाकों में रसिक बाबू-सा कोई गायक नहीं था। कैसे-कैसे और किस-किस के झूमर नहीं आते थे इन्हें! 'टान' सुर से लेकर हल्के सुर तक। भवप्रीता से शुरू कर के हाड़ी राम और चामू तक के! बहुत से झूमर तो इनके खुद के बनाये थे। उनके अद्‌भुत गले के साथ अंगुलियाँ जब अद्‌भुत रूप से मादल पर थिरकने लगतीं, बिजली का रोम-रोम नाच उठता। कभी-कभी तो ऐसा हुआ कि रसिक बाबू ने गायन बंद कर दिया, ताल तोड़ दिया, लेकिन वह नाचती रही तब तक, जब तक कि रसिक बाबू कह नहीं उठते–'वाह, वाह!' तब वह झुककर उनके चरणों की धूल माथे पर लेती और उनके पास ही बैठ जाती। रसिक बाबू उसके सर पर हाथ फेरते और आशीष देते–'तुममें बहुत कला है बेटे। तुम साक्षात् अप्सरा की संतान हो। एक दिन तुम्हारा बहुत नाम होगा!'

और हुआ भी वही, बिजली की ऐसी धूम मची कि जहाँ नाच, वहाँ बिजली! कितने लोग तो बयाना लेकर आते, लेकिन निराश लौट जाते। शादी-ब्याह के दिनों में तो महीनों पहले से उसके दिन तय रहते। इन दिनों उसके खान-पान, रख-रखाव सबका ख्याल चपला रखा करती थी। कितना प्रेम दिया था उन्होंने! कितने सारे 'गुर' बताये थे।

पैसा बरस रहा था, लेकिन, चपला का दिया सबक पैसों के मामले में भी वह अमल कर रही थी। चपला ने कहा था, 'नाच के समय 'फेरी' लेने के लिए कभी भी 'आसर' से बाहर मत जाओ। बहुत हंगामे हो जाते हैं इस कारण से। हाँ, कोई कद्रदान अगर 'आसर' पर आ कर 'फेरी' दे जाए, तो लेना बेजा नहीं है। उसे स्वीकार किया जा सकता है। यह 'फेरी' का पैसा उसका अपना पैसा होता। रसिक बाबू और चपला दीदी कभी उसका हिसाब नहीं मांगते। और, जो बयाने का पैसा आता वह सम्मिलित होता। उसी से घर चलता।

और अब वह वाक्या, जब 'बिजली' की लाल काकू से मुलाकात हुई और वह 'बिजली बाई' से 'नचनी काकी' बन गयी।

सब समय का खेल है, बिजली बाई से नचनी काकी बनने के बाद एक भेंट में उसने मुझसे कहा था, 'एक समय था नुनुआं, जब पेट की आग बुझाने के लिए मुझे यह (घटिया) रास्ता अख्तियार करना पड़ा था। और अभी एक समय है कि, कद-काठी बनाये रखने के लिए भूखा रहना जरूरी हो जाता है। दुख सिर्फ यही रहा कि जब तक मेरी शोहरत बनी और मैं कुछ कर सकने लायक हुई, मेरा बूढ़ा बाप

''चपला के लिए भी यह नयी परिस्थिति थी। उसने जिंदगी भर विभिन्न जगहों पर नाचा था लेकिन ऐसा हुड्दंग कभी, कहीं नहीं हुआ था। बहुत से लोग उठ कर अब खड़े हो गए थे। चपला ने कहा, 'बेटी, उठ कर खड़ी तो हो जाओ। लोग तुम्हें बैठा देख ज्यादा विचलित हो गए हैं। और संभव है, तो एक हिंदी गाना, टूटा-फूटा जैसा भी हो, गा दो। सत्यानाश हो इन फिल्म वालों का। नए लड़कों का दिमाग इन लोगों ने खराब कर दिया है!''

और मेरी सौतेली माँ, दोनों मर चुके थे। मैं चाह कर भी उन्हें कोई सुख न पहुंचा सकी।'

लाल काकू से उसकी मुलाकात भी समय का ही एक खेल कहिये। उस वक्त हम काफी छोटे थे। हाफ पैंट तक पहुँची थी हमारी उम्र। मेरे गाँव में भी उसके नाच का आयोजन था। किसी बारात के साथ आई थी। आठों गाँव में खबर फैल गयी–बिजली बाई का नाच होगा। शाम होते ही लोग जमा होने शुरू हो गए थे। बन-संवर कर जब बिजली बाई आसर में आई तो उसका दिल काँपने लगा। इतना बड़ा आसर उसके अब तक के जीवन में कभी न जमा था। चपला हरदम की तरह उसके साथ थी। उसने बिजली बाई की घबड़ाहट भांप ली। एक मीठी झिडकी दी, 'नादानी मत करो। यह तुम्हारी शोहरत है। इसे अपना इनाम समझो। फिर मैं तो हूँ ही।' चपला दी की बातों ने उसमें हिम्मत भरी और वह घुंघरू बांधकर खड़ी हो गई।

क्या समां था वह, तालियों की गड़गड़ाहट गूंज गई। एक डेढ़ सौ तो सिर्फ बाराती थे। ऊपर से 'आठों गांव' की जनता की भीड़! उसने चपला दी की नीति का अनुसरण करते हुए सामने बैठे गांव घर के बुजुर्गों के पैर छुए और संभल कर खड़ी हो गई और जब झूमर शुरू किया–

'के वामा केशरी पऽरे,
दस करे अस्त्र धऽरे,
जुझिछेन घोर समरे;
रुपे जिनी चपला,
महेश जार प्रेम पागऽला'

(वह वामा कौन है, जो सिंह पर सवार है, जिसके दसों हाथ में अस्त्र-शस्त्र हैं और जो युद्ध में घमासान लड़ाई लड़ रही है? जिसका रूप बिजली को मात देता है, शिव जी जिसके प्रेम में पागल हैं?)

थाय-थाय लोग! बुत बन गए हों जैसे! रूप, सुर और ताल ने सबको जड़कर दिया था। रसिक बाबू ने चपला के कान में कहा, 'आज मिहनत सफल हो गयी। भवप्रीता ने इस जैसी वामा को देख कर ही, यह झूमर लिखा होगा।' और उसने एक के बाद एक, झुमरों की झड़ी लगा दी। जब हलके सुरों पर आई तो फिर भदरिया, मल्हरिया, झूमटा, खेमटा सब! (ये सब झुमरों के प्रकार हैं)

रात काफी बीत गयी थी। बिजली बाई को थकान होने लगी। पर आसर था कि टूट ही नहीं रहा था। जो जहाँ था, वहीं जड़ हो गया था। तभी दूर से किसी ने आवाज लगाई–'हिंदी गाओ, हिंदी गाना!' फिर उसके साथ पांच-दस स्वर एक साथ बोल उठे, 'हां, हां, हिंदी गाना! हिंदी गाना!!'

शांति भंग हो गई थी। बिजली बाई की जादू का असर जैसे अचानक किसी ने झकझोर कर तोड़ दिया हो! रसिक बाबू ने गौर किया, आवाज लगाने वाले श्रीरंग पुर गांव के कुछ छोकरे थे, जो ऐसे अवसरों पर हुड्दंग मचाने के लिए कुख्यात थे। सामने बैठे बुजुर्ग इस अव्यवस्था पर रुष्ट होकर चले गए थे। बिजली बाई परेशान! उसने हिंदी गाना सीखा ही न था। इधर अवश्य ही कुछ समय से हिंदी गानों की फरमाइश हो जाती थी, पर, इसे उसने कभी गंभीरता से नहीं लिया था। वह बैठ गई। तभी पीछे से स्वरों का एक और रेला उभरा, 'नचनी बैठ क्यों गयी? मंगनी की आई है क्या? उठो, उठो!'

'हां, हां हिंदी गाना गाओ। हिंदी गाना। झूमर-उमर नहीं चलेगा!'

चपला के लिए भी यह नई परिस्थिति थी। उसने जिंदगी भर विभिन्न जगहों पर नाचा था लेकिन ऐसा हुड्दंग कभी, कहीं नहीं हुआ था। बहुत से लोग उठ कर अब खड़े हो गए थे। चपला ने कहा–'बेटी, उठ कर खड़ी तो हो जाओ। लोग तुम्हें बैठा देख ज्यादा विचलित हो गए हैं और संभव है, तो एक हिंदी गाना, टूटा-फूटा जैसा भी हो, गा दो। सत्यानाश हो इन फिल्म वालों का। नए लड़कों का दिमाग इन लोगों ने खराब कर दिया है!' मन मार कर बिजली उठी तो, भीड़ से फिर वही स्वर उभरे–'हिंदी गाना, हिंदी गाना!' आखिर उसने खंखार कर गला साफ किया और गाना शुरू किया–'एक परदेशी मेरा दिल ले गया, जाते-जाते मीठा-मीठा गम दे गया...'

सम पर आते-आते उसका ताल टूट गया और अचानक किसी योजना के तहत भीड़ का एक भारी रेला

ठेलम-ठेल करता हुआ मुख्य आसर पर आ धमका। उनमें से किसी ने गैस बत्ती को लाठी से मारकर फोड़ दिया तो घुप अंधेरा छा गया। लोगों में हडकंप मच गया तब, जब बिजली बाई की पुकार उनके कानों तक पहुंची–'बचाओ, बचाओ!'

अब यह जाहिर हो गया था कि कुछ लोग, संभवत: श्री रंग पुर के वही लोग नचनी छीनकर ले जाने का प्रोग्राम बना कर आये थे। फिर तो क्या था– पूरा 'गंडोगोल' हो गया! यह गांव वालों की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। उनके गांव से नचनी छीनकर ले जायेंगे लोग? और सबसे बड़ी प्रतिष्ठा लाल सिंह के पिता माधो सिंह की थी। वे गांव के मुखिया थे। लोगों ने देखा–एक हाथ में अपने पांच सेल का टार्च तथा दूसरे में एक लंबी लाठी लिए हुए लाल सिंह भीड़ में कूद पड़े थे, उधर-जिधर से बिजली बाई का 'बचाओ- बचाओ' स्वर आ रहा था। और जब वे भीड़ से निकले, बिजली बाई उनकी पीठ पर चिपकी पड़ी थी। तब तक 'मारो-मारो' करते हुए पूरे गांव और बारात के लोग भी श्री रंग पुर वालों पर टूट पड़े थे। तभी एक जोर का धमाका हुआ–'भडाम!' श्री रंग पुर वालों ने बम फेंक दिया था और भाग खड़े हुए थे।

बम फेंक दिया था बिजली बाई की तकदीर पर! हुआ यह कि जब श्री रंग पुर वाले भागने लगे तो भीड़ में फंसे रसिक बाबू और चपला दी ने सोचा कि वे बिजली बाई को ले भागने में सफल हो गए। वे बेतहाशा उनके पीछे दौड़ने लगे। अपने पीछे उनको दौड़ते पाकर उन्होंने एक बम फेंक दिया। और वह बम उन्हीं दोनों के बीच आ गिरा, जिससे दोनों वहीं धराशायी हो गए।

नचनी काकी ने बाद में बताया था, 'वह बम नहीं फूटा था नुनुआं, मेरी तकदीर फूटी थी'। ठीक तो! रसिक बाबू और चपला दी के अलावा उसका संसार में था ही कौन?

रसिक बाबू और चपला दी की लाशों के सामने बैठी वह रो रही थी– रसिक बाबू और चपला दी के रूप में उसके जीवन के सहारे चले गए थे। अनिश्चित भविष्य अपना विकराल मुँह बाँये सामने खड़ा था। गाँव के लोग उसे घेरकर खड़े थे। उसी समय लाल काकू आये थे। कहा था, 'रोती क्यों हो बिजली बाई? मैंने तुम्हारी जान बचाई है, सहारा भी मैं ही दूंगा! पर पहले इनका दाह-संस्कार कर लेने दो।' गाँव वालों ने दांतों तले अंगुली दबा ली जब उन्होंने देखा कि दाह-संस्कार के बाद वे सचमुच उसे लेकर अपने घर आ गए। उन्होंने नौकरों के रहने के लिए जो घर बने हुए थे, उन्हीं में से एक घर खुलवा कर उसे रहने के लिए दे दिया। बिजली बाई के नचनी काकी बनने की प्रक्रिया में यह पहला कदम था।

लाल काकू के पिता माधो सिंह, जिन्हें हमलोग मुखिया दादू कहते थे, उस दिन घर पर नहीं थे। दूसरे दिन लौटे तो बेटे की कृति देख कर सर पीट लिया। उनके घर एक 'रंडी' ने आश्रय ले लिया था। लाल काकू उनके इकलौते लड़के थे। शादी-शुदा थे और दो बच्चों के बाप भी। मुखिया दादू ने हुक्म जारी किया 'निकालो इस रंडी को मेरे घर से या फिर तुम खुद इसे लेकर निकल जाओ।'

लाल काकू उन दिनों उनके सामने नहीं फटकते थे। गांव के कुछ लोगों ने मुखिया दादू को समझाया–'अरे, लाल ने उसे थोड़े ही अपने घर बिठाया है? उसे अपने नौकरों की ही एक जगह दी है। एक गरीब को आसरा दिया है तो रहने दो। मिहनत-मजदूरी कर के रह लेगी।' लेकिन, होना तो कुछ और ही था। लाल काकू रात-दिन बिजली बाई के यहां ही पड़े रहने लगे। जब मन होता उससे झूमर सुनते और बाकी समय 'टुकुर-टुकुर' उसका मुँह ताकते रहते। अपनी पत्नी और बच्चों की सुध लिए हुए एक अरसा बीत गया था, उनका। अपने ही घर में अपना सुहाग लुटता देख कर लाल काकू की पत्नी से न रहा गया। एक दिन, जब लाल काकू कहीं बाहर घुमने गए हुए थे, ठीक एक क्षत्राणी की तरह वह दो मंजिले से उतरी और झोंटा पकड़ कर बिजली बाई को घर से निकाल बाहर किया तथा कमरे में ताला जड़ दिया।

''बम फेंक दिया था बिजली बाई की तकदीर पर! हुआ यह कि जब श्री रंग पुर वाले भागने लगे तो भीड़ में फंसे रसिक बाबू और चपला दी ने सोचा कि वे बिजली बाई को ले भागने में सफल हो गए। वे बेतहाशा उनके पीछे दौड़ने लगे। अपने पीछे उनको दौड़ते पाकर उन्होंने एक बम फेंक दिया। और वह बम उन्हीं दोनों के बीच आ गिरा, जिससे दोनों वहीं धराशायी हो गए।''

जिस आदमी को अपने से कभी फूल तोड़ने तक की जरूरत नहीं पड़ी, वह मेरे लिए कोयले तोड़ रहा था! उन दिनों उन्होंने क्या दु:ख नहीं झेले, लेकिन, आन की बात थी और शरण में आई अबला की रक्षा का प्रश्न था, भले वह 'पतुरिया' ही क्यों न हो, लाल काकू चट्टान की तरह अड़े रहे।'

इन्हीं दिनों बिजली बाई नचनी काकी बन गयी थी।

'नीच जाति की औरत 'मरद' की कद्र नहीं जानती है, ऐसा लोग कहते हैं। किंतु लोग उन दिनों बिजली बाई को देखते तो उससे सबक लेते' एक बार प्रसंग वश लाल काकू ने मुझे बताया था। बनाव-सिंगार तो तो उसने कब का छोड़ दिया था। गृहस्थ औरतों की तरह सर पर पल्लू भी उसी समय से रखने लगी थी और लाल काकू उसके ब्याहता पति से भी अधिक सम्मान के हो गए थे। वह सेवा की मूर्ति बन गयी थी।

किंतु, इस बीच यहां गांव में भयानक परिवर्तन हो गए थे। मुखिया दादू को इस घटना या दुर्घटना ने तोड़ दिया था। उन्होंने अपनी पूरी संपत्ति अपनी बहू और पोतों के नाम कर दी और एकाध जमीन फटे तो बिजली बाई धंस जाये उसमें, ऐसी हालत हो गयी उसकी। नचनी थी, नाचती थी। पर इस तरह की बेइज्जती उसकी कभी नहीं हुई थी। वह आंगन में पड़ी सुबक रही थी कि बाहर से घूम-घाम कर लाल काकू आ गए। स्थिति समझने में उन्हें देर न लगी। गाँव के लोग तमाशबीनों की तरह फिर जुट गए थे। उनहोंने 'खप' से बिजली बाई का एक हाथ पकड़ा और उठाते हुए कहा, 'चलो, अब यहाँ एक पल नहीं रहा जा सकता।' बिजली बाई आज्ञाकारी बालक की तरह उनके पीछे हो ली।

भीतर-ही-भीतर लाल काकू बिजली बाई से इस कदर जुड़ गए हैं कि उसके लिए घर-द्वार, लाखों की संपत्ति, सुंदर पत्नी, फूल-से दो बच्चे सब कुछ, छोड़-छाड कर जा सकते हैं, यह किसी ने अनुमान तक न किया था। उनकी इस हरकत से सभी हैरान रह गए थे और आगे-आगे उन्हें तथा पीछे-पीछे बिजली बाई को जाते हुए देखते रह गए थे। न मुखिया दादू ने उन्हें टोका, न काकी ने ही बाधा दिया।

यों तो लाल काकू शुरू से ही जरा रंगीन तबियत के आदमी रहे थे। झूमर गाने, फैशन करने, सब के शौकीन। गाँव में छैल-छबीले की तरह सज-संवर कर घूमा करते थे। छोकरियाँ उनके पीछे जान देतीं थीं। वे भी मछली फांसने में माहिर थे। मुखिया दादू ने इस उड़ते परिंदे को बंधने के लिए ही फटाफट शादी करा दी थी और दो-दो बच्चे हो जाने के बाद तो वे बिलकुल ही निश्चिंत हो गए थे। पर लाल काकू के भीतर की लाली एक दिन ऐसा रंग लाएगी, किसी ने यह सोचा भी न था। रूप। रस और रंग ने मिल कर मुखिया दादू के घर और चेहरे पर कालिख पोत दी थी।

'बड़ी यंत्रणा के दिन थे वे नुनुआं' नचनी काकी ने बताया था,' साथ में न अन्न, न पैसा। मेरे शरीर में जो गहने थे, बेच-बेच कर कुछ दिनों तक गुजारा किया। फिर एक दिन कोयला खदान में जा उठे। वहां मालिक से कह-सुन कर लाल काकू मजदूरी में लग गए। लेकिन मुझे घर से निकलने न दिया। साल बाद चल बसे। इस सुनसान घर की मालकिन बनी बहू भी एक दिन सारी जायदाद बेच-बाच कर आने नैहर जा बैठी। महल खंडहर हो गया था। लोग उसे देख कर कहते, 'बिजली बाई इस घर में बिजली बन कर गिरी थी।'

पिता की मौत का समाचार सुन कर जिस दिन लाल काकू, नचनी काकी के साथ घर लौटे, पूरा मजमा लग गया था। उस दिन कोई अपने घर के अंदर न रहा। सभी निकल-निकल कर पगडण्डी से हो कर आते हुए इन दो प्राणियों को देख रहे थे। घूंघट काढ़े हुए नचनी काकी बहुरिया ही लग रही थी। पहले तो लोगों को शंका भी हुई कि हो-न-हो इनकी ब्याहता पत्नी ही है, बच्चों को नैहर में रख, पति के साथ आ गयी है। परंतु, जब नजदीक आई, सब का भ्रम टूट गया।

लाल काकू ने सीधे अपने घर का दरवाजा खोला और अंदर चले गए। अपमानित हो कर निकली 'पतुरिया' फिर उसी घर में ससम्मान वापस लौट आई थी।

घर लौट कर आने के बाद, लाल काकू को दो भोज देने पड़े–एक जाति भोज, जिससे नचनी काकी को घर में रख लेने का प्रायश्चित्त हुआ तथा दूसरा अपने पिता का श्राद्ध।

लाल काकू गांव के मुखिया के बेटे थे। गांव में 'इज्जत' और 'दबदबा' था उनका। भोज-भात के बाद उन्हें इज्जत और दबदबा दोनों मिल गए। बिजली बाई को हम नचनी काकी कह कर पुकारने लगे थे।

लेकिन, बिजली बाई को नचनी काकी कह कर पुकारने भर से तो पेट नहीं भरता! लाल काकू को जब पता चला कि उनकी धर्मपत्नी सारी जायदाद बेच कर ही नैहर गयी हैं तो वे अर्ध-विक्षिप्त से अपनी ससुराल जा पहुंचे।

पर ससुराल वालों ने उन्हें घर में घुसने तक न दिया। पत्नी ने बात तक करने से मना कर दिया। वे चीख पड़े थे–'यह तुमने क्या कर दिया नागन?

'पत्नी ने जवाब दिया था, 'ज्यादा टें-टें मत करो। जाओ, उस रंडी का रूप धो-धो कर पिओ और मौज करो। मुझे फिर कभी अपना मुंह न दिखाना।'

लाल काकू अपमानित हो कर लोट आये थे। धम्म से आ कर खटिया में धंस गए थे। आंखों के आगे अंधेरा छा गया था। जीवन का विशाल विस्तार पहली बार उनकी ओर खा जाने वाली निगाहों से देखता हुआ प्रतीत हुआ। नचनी काकी धीरे-धीरे उनके पास आई थी। सर सहलाते हुए बोली थी, 'हताश मत होवो। मेरे कमरे में मेरे घुंघरू अब भी मौजूद हैं। तुम्हारी पत्नी ने सिर्फ मुझे निकाला था। वे घुंघरू एक खूंटी से वहां अब भी लटक रहे हैं।'

'तो क्या, फिर से नाचोगी?' असमंजस से काकू ने उसे देखा था।

'नाचने में दोष है, क्या? यह भी तो एक श्रम है। इसकी भी मजदूरी मिलती है। फिर तो तुमने भोज-भात भी खिला दिया है!'

लाल काकू कुछ कह नहीं सके थे। वह नीचे उतर कर अपने पहले वाले कमरे से घुंघरू निकाल लाई थी। उन्हें झाड़ते-पोंछते, वह गुनगुना उठी –'आमि कानूर लगिया,

जोगिनी साजिया,
देश-देशान्तरे जाबो।
नूपुर बांधिबो,
नाचिबो, गाहिबो,
खुजिया शामे आनिबो।'

(मैं अपने प्रेमी के लिए जोगिन बन कर देश-देशांतर को जाऊँगी। मैं घुंघरू बांध कर नाचूंगी, गाऊंगी और अपने प्रिय को खोज कर लाऊंगी)

एक बार फिर धूम मच गई थी। लाल काकू को अब हमलोग बेखटक रसिक काकू कहने लगे थे। वे भी सिर्फ मुस्कुरा कर रह जाते। देखते-ही-देखते रसिक काकू और नचनी काकी पुनः जैसे अपने बसंत में लौट आए थे। दोनों का काया-कल्प हो गया था। शायद दोनों को अपनी-अपनी मुरादें मिल गयी थीं, इसलिए!

उसी तालाब की मेड़ पर, फिर कहीं नाच के लिए जाते उनसे जब मेरी मुलाकात हुई, तो मैंने पूछ लिया–'क्यों काकी, अब तो हिंदी गाना सीख लिया है न?'

नचनी काकी खिलखिला पड़ी। बोली–'तुम क्यों फिकर करते हो नुनुआं? तुम्हारे बेटे के जन्म पर जब तुम्हाते यहां नाचूंगी न, तब सुनना, सीखा है कि नहीं?'

मैं हंसता हुआ आगे बढ़ने ही वाला था कि नचनी काकी ने बुलाया–'नुनुआं, सुनो तो!' फिर एकांत में ले जाकर कहा–'इनकी ससुराल जानते हो?'

'रसिक काकू की?'

'अरे हां, हां, तुम्हारे लाल काकू की।'

'बिलकुल जानता हूँ।'

'मेरा एक काम कर दोगे?'

'कर दूंगा।'

'तो सुनो। ये लो, कुछ रुपये हैं। एक अच्छी-सी साड़ी और इनके दोनों बच्चों के लिए कुरते और पतलून ले कर कल ही पहुंचा देना। अपनी काकी को कहना, 'जितिया के लिए काकू ने भेजे हैं। हरगिज मेरा नाम नहीं लेना। और यह बात लाल काकू को भी नहीं जानने देना।' फिर एक लंबी सांस लेती हुई बोली, 'देखें भगवान कब सुनता है? बच्चों ने तो आना-जाना शुरू कर दिया है। मुझे मौसी कहते हैं। कितना अच्छा लगता है, तुम्हें क्या बताऊं नुनुआं! एक 'वही' अकड़ी हुई है। देखूं, सौगात इस बार भी वापस न आ जाए! दोनों के मन का मैल धोकर, इनका उजड़ा घर बसा दूं, इससे अधिक मुझे क्या चाहिए?'

उसने आंचल से आँखों के कोर पोंछे। आँसू निकल आये थे।

'अच्छा जाओ, पैसे संभाल का रखना किंतु!'

फिर जाते-जाते जोर से पुकार उठी– 'और हाँ! तुम्हारे यहाँ बेटा होगा तो खबर देना जरूर! पैसे नहीं लूंगी, डरना मत। नाच दूंगी, यूँ ही!' उसकी खिल-खिलाहट हवा में गूँज गई थी।

मैं कभी अपने हाथ के पैसों को देख रहा था और कभी जाती हुई उस ललना को!□

कथा मंच

नदी किनारे

चितरंजन भारती
पटना, बिहार
मो0- 7002637813, 9401374744
ईमेल
chitranjan-2772@gmail-com

शहर के प्रमुख चौराहे से निकलकर जो सड़क नदी की तरफ जाती है, उधर एक प्राचीन शिव मंदिर है। इसी मंदिर के पिछवाड़े, नदी के कछार पर एक बस्ती-सी बसी हुई है। निम्न स्तर का काम करने वालों, भिखमंगों आदि का डेरा है वहाँ। अक्सर ही बरसात में, जब नदी उफनती है, तो इस बस्ती का बड़े से हिस्से को अपने आगोश में ले लेती है। बाढ़ के उतरने पर फिर जंग खाए टिनों, टूटे एस्बेस्टसों, फटे-पुराने बोरों-कपड़ों-चिथड़ों-तिरपालों, बाढ़ से छाने गए लकड़ियों, मिट्टी-पत्थर, घास-फूस आदि से फिर घर बन जाते हैं। बस्ती बस जाती है।

शहर के लोग इधर सिर्फ प्रातः भ्रमण करने अथवा मंदिर में शिव दर्शन को ही आते हैं। वैसे इस बस्ती में सभ्य लोग आना पसंद नहीं करते। क्यों आएं वे यहां? यहां भूख, बीमारी, बेकारी, बदहाली, मार-पीट, रोना-धोना, हाय-हाय आदि के सिवा है क्या? शहर के खूबसूरत इलाके का घिनौना दाग है यह। मखमल में टाट के पैबंद की तरह! कभी कोई शहरी इधर आता भी है, तो दाई-नौकर खोजने अथवा भिखमंगों को श्राद्ध के उनतालीस रुपये, दरिद्रनारायण उनतालीस रुपये, भोजन का आमंत्रण देने। काम करके कमाने वालों का मोहल्ला और भिखमंगों का मोहल्ला अलग-अलग है यहां।

कामकाजी मोहल्ले के लोग स्वयं को भिखमंगों से थोड़ा ऊपर समझते हैं। अलबत्ता राम-रमौव्वल तो होती ही है। कभी-कभी तो यह भी होता है कि जब कामकाजी मोहल्ले का कोई असहाय अथवा अशक्त होकर भीख माँगने लगता है, तो वह भिखमंगों के मोहल्ले में रहने लगता है। मगर भिखमंगों के बीच का कोई कामकाजी मोहल्ले में रहने लगा, ऐसी कोई घटना नहीं हुई।

शायद ही कोई भिखमंगा हो, जिसने काम की तलाश की हो और कामकाजी मोहल्ले में अपना आश्रय खोजा हो।

कामकाजी महल्ले का सुमेसरा जब मरा था, तब ऐसा ही कुछ होते-होते रह गया था।

सुमेसरा की औरत गत् वर्ष की बाढ़ में बही जा रही थी। बाढ़ का नजारा देखने वाले ढेर सारे तमाशबीन

थे। मगर उस भयानक, उफनती नदी की खतरनाक लहरों से लड़ने कौन जाए? तभी सुमेसरा शोर सुनकर पहुंचा और कूद ही तो गया नदी में! अच्छा तैराक था वह। औरत तक पहुँच गया और उसे पकड़ भी लिया। मगर उस औरत ने अकबकाकर उसे दबोच लिया और उसे भी साथ ले डूबी।

सुमेसरा के घर में थी उसकी कानी बुढ़िया माई, दस बरस की लड़की हीरा और छह बरस का शंकर। लोग अब यह अनुमान लगा रहे थे कि सुमेसरा की माई भी भीख मांगकर गुजारा करेगी। मगर बुढ़िया ने तो साफ ऐलान कर दिया कि अब वह काम करेगी। वैसे भी पहले भी काम करती ही थी। मगर जब से बेटा-बहू कमाने लगे थे, वह काम-धाम छोड़कर घर पर ही रहने लगी थी।

काम करने वालों के लिए काम की कमी नहीं होती। फिर शहर में तो सैकड़ों छोटे-मोटे काम थे। बर्तन-कपड़े धोने, अनाज-मसाला पीसने-कूटने से लेकर पत्थर तोड़ने, गारा ढोने तक का काम बुढ़िया करने लगी। सुमेसरा की बेटी कभी-कभार हाथ में बोरा लिए, अपने भाई का हाथ पकड़े, साथी-संगियों के साथ कूड़ों के ढेर में से काम की चीजें निकालते, बटोरते शहर भर की खाक छानती-फिरती।

जीवन पुनः सामान्य हो चला था। मगर इस बीच हीरा कहीं गुम हो गई। नाम के अनुरूप वह लड़की ही थी। चिथड़ों में लिपटे होने के बावजूद वह बहुत सुंदर, प्यारी-सी लगती थी।

एक दिन वह अपने हमजोलियों के संग कूड़े के एक ढेर को कुरेद रही थी, कि एक दूसरे कूड़ेखानों में एक आदमी ने बड़ा-सा टोकरा उड़ेला। खाली टीन, शीशियों, अगरबत्ती के पैकेट, पोलीथीन के थैले, कागज-पत्तर, फलों-सब्जियों के कतरन-छिलके और जाने क्या-क्या पड़ा था वहां? सभी उधर दौड़ पड़े और काम की चीज खोजने लगे। वे बच्चे, जिनके खाने-खेलने और पढ़ने-लिखने की उम्र थी, अपने पेट की खातिर उस ढेर पर झपट्टा मारने में मसरूफ हो गए।

थोड़ी ही देर में वह ढेर छोटा होकर, इधर-उधर बिखर गया था। उन बच्चों के बोरों में कुछ और सामान आ गया था। वे सभी चलने को हुए, मगर वहाँ हीरा नहीं थी। शंकर रोने लगा। सभी यह सोचकर लौटे कि शायद वह घर चली आई हो। मगर वह तो उधर आई ही नहीं थी।

अख़बारों में न तो हीरा के खोने का विज्ञापन छपा, और न ही टी. वी. में उसका फोटो आया। कुछ दिनों की खोज-खबर के बाद फिर सबकुछ सामान्य हो गया। रोज कुआं खोदकर पानी-पीना ही जहां जीवन हो, वहां एक बच्ची की खातिर कौन माथा खपाए? मगर शंकर का जीवन तो एकदम से सूना हो गया। बहन उसका आधार, उसका साथी थी। वह उसे खिलाकर स्वयं भूखी रह जाती। उसे ओढ़ाकर स्वयं ठंढ से ठिठुरकर रह जाती। शैतान बच्चों से उसकी रक्षा का दायित्व भी बहन का ही था। वह उसे याद करता, तो उसका मन कुहंक उठता। मगर अब उसकी सुनने वाली बहन न थी।

कहां गई होगी वह? लोग तरह-तरह की बातें बनाते, अटकलें लगाते कि क्या पता कोई उठा ले गया हो और दूसरे शहर में ले गया हो। यहां शहर में बाघ-भालू तो हैं नहीं, जो खा ले और पता न चले। दुर्घटनाग्रस्त होती, तो भी पता चलता। बुढ़िया को तो अब सचमुच डर लगने लगा। झोंपड़ी जैसे उसे काट खाने को दौड़ती। मगर फिर यही सोचकर संतोष कर जाती कि क्या आज तक कभी कोई झोपड़ी में रह सका है? लेकिन अब जब भी वह कहीं काम पर जाती, तो शंकर को साथ में अवश्य कर लेती। 'इस बुढ़ापे की लकड़ी को भी कोई छीन न ले, यही सोच उसे खाए जाता था। जनवरी का महीना चल रहा था, और बुढ़िया भी बीमार चल रही थी। फिर भी काम पर तो जाना ही था। नहीं तो चूल्हा कैसे जलता? सर्दी-खांसी, कमर दर्द से तो वह पहले से ही परेशान थी। इधर और जाने क्या-क्या तकलीफ बढ़ गई थी। शंकर छोटा था। घर में कोई आसरा नहीं। शीत-लहरी के ये दिन काटे नहीं कट रहे थे।

मकर संक्रांति का दिन नजदीक था। इधर बुढ़िया तीन दिन से चारपाई पर पड़ी थी। वह, खांए-खांए करते हुए इधर-उधर खंखार फेंकती, फिर उठने में एकदम अशक्त हो अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहाती थी। घर में खाने को एक दाना नहीं। शंकर, दादी-दादी करते हुए यहां-वहां डोलता फिरता और खाना मांगता। मगर घर में कुछ हो, तब तो। बुढ़िया दादी शंकर से सारे डब्बे खुलवा कर देख चुकी। मगर सब खाली पड़े ढनमना रहे थे।

शंकर बाहर निकल आया। दोपहर का समय। कामकाजी मोहल्ला लगभग

''मगर अब धरा-प्रवाह गालियों का आदान-प्रदान चल रहा था। उसके आगे कुछ लड़के पैसों का जुआ खेल रहे थे। एक झोपड़ी के पीछे दो साए फिल्मी अंदाज में लिपटे हुए नोंक-झोंक कर रहे थे। आगे एक स्थान पर कुछ औरतें बैठी हुई एक-दूसरे के मैले, चीकट बालों में से जुएँ निकाल-निकालकर पटापट मार रही थीं। और आगे बढ़ने का उसे मन न हुआ। पेट में आग सी लगी थी। कहीं से कुछ खाने को मिल जाता? वह लौट चला।''

खाली था। बच्चे बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी काम पर गए थे। वह भिखमंगों के मोहल्ले की तरफ निकल आया। कल मकर संक्रांति होने की वजह से इधर उल्लास छाया हुआ था। चेहरों को और अधिक विकृत और दयनीय तथा अपंग शरीर को और अधिक अपंग बनाने की वर्जिश-सी चल रही थी। कटे-फटे घावों को और अधिक गहरा और रक्तमय किया जा रहा था। बगल में ही नदी बहती थी। इसके बावजूद कौन भिखमंगा था, जो नहाता था! हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले भी भीख मांगने के अपने नुस्खे ठीक करने में व्यस्त थे।

एक जगह कलटुआ कोढ़ी धूप में बैठा था। उसकी औरत एक ब्लेड से उसके घावों को कुरेद-कुरेद कर खून और मवाद को यहां-वहां भर रही थी। कलटुआ दर्द से आंख मींच लेता, मगर कुछ नहीं कहता था। शंकर ने घृणा और असहनीय दर्द की कल्पना कर आँखें फेर लीं।

एक जगह एक आदमी और दो औरतें जाने किस बात पर गुत्थम-गुत्था थे। तमाशबीन मजा ले रहे थे। उसके आने तक लड़ाई खत्म हो चुकी थी। मगर अब धारा-प्रवाह गालियों का आदान-प्रदान चल रहा था। उसके आगे कुछ लड़के पैसों का जुआ खेल रहे थे। एक झोंपड़ी के पीछे दो साए फिल्मी अंदाज में लिपटे हुए नोंक-झोंक कर रहे थे। आगे एक स्थान पर कुछ औरतें बैठी हुई एक-दूसरे के मैले, चीकट बालों में से जुएँ निकाल-निकालकर पटापट मार रही थीं। और आगे बढ़ने का उसे मन न हुआ। पेट में आग-सी लगी थी। कहीं से कुछ खाने को मिल जाता? वह लौट चला।

उन औरतों में से एक को उसके घर का हाल मालूम था। वह पूछ बैठी, 'काहे रे संकरवा! एतना उदास काहे है? दादी बीमार है... दादी बीमार है' एक दूसरी औरत ने मुँह बनाया-'अरे बुढ़ी है, कानी है! बगल में एक पोता है। भीख मांगने के लिए और क्या चाहिए? मगर बड़का बनती है महारानी! बड़ा बनने चली है कामवाली, इज्जत वाली!'

उस औरत के मुँह बनाकर बोलने पर बाकी औरतें ठहाका मारकर हँस पड़ीं। कौन कहेगा कि इन्हें किसी भी प्रकार का दुख है! मगर फिर पहले वाली औरत ने पूछा-'कुछ खाया है या नहीं?' उसके न करने पर वह दो रोटी और सब्जी ले आई। देखते-देखते वह रोटी खा गया। जाने लगा, तो फिर एक औरत बोली-'बोल देना दादी को, कल मकर संक्रांति है। आ जाएगी थाली-गुदड़ी लेकर। माह भर का खर्च निकल आएगा। घर लौटकर शंकर ने जब दादी से सारी बात बताई, तो बुढ़िया सन्न रह गई! फिर पास में पड़ी छड़ी शंकर को दे मारी हुए बोली, 'हे भोले बाबा!', बुढ़िया अपने सिर और छाती पर दोहत्थड़ मार-मारकर रोते हुए कहने लगी-'अब क्या इसी दिन के लिए जिंदा रखे हो। अब क्या भीख मंगवाओगे मुझसे। मुझे मौत भी तो नहीं आती रेऽऽ?' शंकर अब तक सुबक रहा था। मगर दादी का यह हाल देख उसके होश-हवास गुम हो गए। यह क्या कर दिया उसने! फिर वह रोना छोड़ दादी से लिपट गया। उन दोनों की रोते-रोते हिचकियाँ बँध गई। शंकर को उबकाई-सी आने लगी थी। ओह! उसने दादी का दिल दुखा दिया। वह सोच रहा था। उधर बुढ़िया सोच रही थी-'इसमें इस का क्या कसूर? इस निष्ठुर दुनिया ने आखिर इसे दिया क्या है?'

मकर संक्रांति की सुमधुर सुबह! रात गए ही भिखमंगों ने शहर से नदी तरफ को आनेवाली सड़क के दोनों किनारों पर कब्जा जमा रखा था। फटे हुए चादर, कपड़े, गुदड़ी-कथरी-कंबल और अल्युमुनियम के थाली-कटोरों की पंक्तियां-सी लगी थीं। और वहां भिखमंगे बैठे हुए, खड़े हुए, लेटे हुए, कोई खंजड़ी-करताल बजाकर, अपने चेहरों पर बेचारगी लपेटे हुए, दुनिया भर की दयनीयता लादे रात से ही डटे पड़े थे। मंह अंधेरे ही चींटियों की कतार की तरह शहर से श्रद्धालुगण नदी स्नान करने, ग्रह गोचर उतारने, शिव दर्शन

करने और दान-पुण्य की कामना लिए आने लगे थे। भिखमंगों में भनभनाहट शुरू हो चुकी थी। सोये हुए जाग गए थे। जागे हुए भिखारी सोये हुए को जगाने का अलख जगा रहे थे।

अजब समां था!

भूख के मारे शंकर को रातभर नींद नहीं आई थी। दादी के गले में गलबहियाँ डाले, वह रातभर कुनमुनाता रहा था। बुढ़िया भी अपनी तकलीफ के मारे रातभर कहां सो पाई थी, सो रातभर कराहती रही थी। सूर्य की पहली किरण के साथ ही शंकर तो उठ गया। मगर बुढ़िया की आंख लग गई थी।

पास के नल पर हाथ मुंह धोने के बाद उसने दो-तीन चुल्लू पानी पेट में उतार लिया।

इस समय वह एक बड़ा-सा पैंट और कई जगह से उघड़ा हुआ बदरंग स्वेटर पहने हुए था। नदी किनारे की सड़क पर जब वह आया, तो यहां का उत्साह और आमोद-प्रमोद देखकर थोड़ी देर के लिए वह अपना दुख भूल गया।

रंग-बिरंगे परिधानों में सजे-धजे स्त्री-पुरुष-बच्चों के कदम इधर नदी की तरफ ही बढ़े चले आ रहे थे। यह नदी रोज बहती है। आज भी बह रही है। मगर आज के कोलाहल में नदी की वह सुमधुर कलकल ध्वनि कहीं डूब सी गई है। जनवरी की इस भयानक ठंड में भी लोग अपने वस्त्र उतार उत्साहपूर्वक नदी में नहा रहे हैं। भगवान भास्कर को अर्ध्य दे रहे हैं। शंकर अपनी भूख भूल इन दृश्यों का आनंद लेने लगा। इसी नदी ने उसके माता-पिता को निगल लिया। शहर ने उसकी प्यारी बहन को गायब कर दिया। दादी उधर खाट पर पड़ी अपनी बीमारी से संघर्ष कर रही है। और वह... वह यहां भूख से बेहाल हो इधर-उधर भटक रहा है।

इतने बड़े हजूम में, इतने विशाल मेले में उधर ध्यान देनेवाला कोई नहीं है। यहां उसकी बस्ती के कुछ चंट-चालाक लड़के भी घूम रहे थे। कोई नजर चूकते ही सामान उठाकर चंपत होने के चक्कर में था। तो कोई दीन-हीन बना, याचना का हाथ फैलाए भीख मांग रहा था। कुछेक ने तो एक कदम आगे बढ़कर त्रिपुंड लगाकर, बिसातियों के यहां से दस-बीस पैसे में खरीदे हुए चंदन-रोली का टीका लगा, ब्राह्मणसुत बनकर स्नानार्थियों को लगाते थे और पांच पैसे से पांचेक रुपए तक की दक्षिणा वसूल किए ले रहे थे। भीख मांगने का एक तरीका, यह भी तो है ही, जो सनातन काल से चला आ रहा है।

लोग नदी किनारे की चमचमाती बालूका-राशि पर अपने परिवारों, रिश्तेदारों अथवा मित्रों के साथ बैठे हुए का काम कम, पिकनिक का ज्यादा आनंद ले रहे थे। नदी में नावें चल रही थीं। मल्लाह प्रसन्न थे। आज अच्छी और नकद आमदनी की आशा है। नाव भर-भरकर लोग नदी पार उतर रहे थे। शंकर का मन हुआ कि वह भी नदी तैरकर पार चला जाए। छोटा है, तो क्या हुआ? उसने अब संघर्ष करना तो सीख ही लिया है। वह चाहे वक्त के थपेड़े हों अथवा नदी की लहरें, अब उसे डर नहीं लगता।

मगर वह मंदिर की तरफ बढ़ चला। अपने समय में, अपने हिसाब से यह प्राचीन मंदिर ही रहा होगा। कहते हैं कि किसी राजा ने पुत्र होने की खुशी में इस मंदिर का निर्माण कराया था। मगर आज आबादी बढ़ने के कारण, इस विशाल मेले के आगे यह मंदिर छोटा लग रहा है।

भगवान शंकर के दर्शनार्थ लोग तिल-तिल करते आगे बढ़ रहे हैं। उनके हाथों में जल भरा पात्र, फूल, बेल-पत्र, प्रसाद, पैसा, अगरबत्ती आदि है। पहले नंदी बैल की काली प्रतिमा है। फिर विशाल घंटा, जिसकी कर्कश ध्वनि आज वातावरण में लगातार गूँज रही है। गर्भगृह में शिवलिंग है। क्या यहां भगवान भूतनाथ होंगे? शायद हां, तभी तो इतने लोग आ रहे हैं। शायद नहीं, क्योंकि असंख्य लोगों की गर्म सांसों और अगरबत्तियों के धुएँ से क्या

''इतने बड़े हजूम में, इतने विशाल मेले में उधर ध्यान देनेवाला कोई नहीं है। यहाँ उसकी बस्ती के कुछ चंट-चालाक लड़के भी घूम रहे थे। कोई नजर चूकते ही सामान उठाकर चंपत होने के चक्कर में था। तो कोई दीन-हीन बना, याचना का हाथ फैलाए भी मांग रहा था। कुछेक ने तो एक कदम आगे बढ़कर त्रिपुंड लगाकर, बिसातियों के यहां से दस-बीस पैसे में रीदे हुए चंदन-रोली का टीका लगा, ब्राह्मण सुत बनकर स्नानार्थियों को लगाते थे और पांच पैसे से पांचेक रुपए तक की दक्षिणा वसूल किए ले रहे थे। भीख मांगने का एक तरीका, यह भी तो है ही, जो सनातन काल से चला आ रहा है।''

उनका दम घुटता नहीं होगा? कौन ठीक, वह यहाँ से भाग ही न गए हों! कारण कि लोग तो जैसे-तैसे अपनी श्रद्धा का सामान यहां चढ़ाकर मुक्ति पा लेते हैं। मगर वे जाएं, तो जाएं कहाँ? वहां पर मुस्तैद हैं कुछ मस्त पंडे, जिनकी गिद्ध नजर चढ़ावे के पैसों पर है। जिन फूल, बेल-पत्रों को भक्तजन बड़ी ही श्रद्धा के साथ मालियों से खरीद कर चढ़ा रहे थे, उन्हीं फूल, बेल पत्रों को पंडे टोकरियों में भर-भरकर बाहर कूड़ेदान में फेंक रहे थे। छोटा शंकर क्या जाने समझे इन बातों को? कूड़े के ढेर के पास गाय-बैल-बकरियों आदि में होड़ लगी थी कि कौन काम की चीज उदरस्थ कर, फिर उनकी ऐसी-तैसी करता है! श्रद्धा के ये फूल-पत्र स्वयं श्रद्धालुओं द्वारा भी कुचले जा रहे थे। भोले शिव उन फूल-पत्रों की सुगंध भी न ले पाते होंगे कि उन्हें बाहर फेंक दिया जा रहा था।

दोपहर होने लगी थी। लोग यहां-वहां बिखरे बैठे हुए थे। अपने-अपने दल के साथ चूड़ा, तिल की मिठाइयाँ, रेवड़ियाँ और जाने क्या-क्या चीजें खा रहे थे। वह फिर इधर घाट की ओर चला आया। इधर मेला-सा लगा था। हलवाइयों की भट्ठियों पर कड़ाह चढ़े थे, जिनमें से गरम-गरम जलेबियां, पकौड़ियां आदि उतर रही थीं। उनकी काँच की आलमारियों में रंग-बिरंगे नमकीन और मिठाइयां सजी थीं। हलवाइयों को छींकने तक की फुर्सत न थी। खरीददार टूटे पड़ रहे थे। मगर शंकर... उसका बुरा हाल था। आह! कहीं से एक सूखी रोटी मिल जाती! वह सोचता और खून के आंसू रोता था। वह फिर नदी किनारे की सड़क पर चला आया। वहां भिखारियों की लंबी लाइन दानदाताओं का गुहार लगा रही थी। उनका वह दिखावटी आर्त्तनाद राह चलते लोगों को दाता बनने पर मजबूर कर रहा था। उनमें से कई दानदाताओं के पास तो थैले होते थे, जिनमें से वे कुछ सामान निकालकर तटस्थ भाव से भिखारियों को दान दिए चले जाते थे। भिखारियों के पीछे छिपी हुई गठरियां बड़ी हो रही थीं। सामने के चादर पर कुछ पैसे, चावल, चूड़ा, तिल और मूढ़ी के लड्डू, बताशे और याचना का वह दीन स्वर था, जो पत्थर दिल वालों को भी मर्माहत किये दे रहा था। शंकर क्रम से सबको देखता चला जा रहा था। क्या यह वही लोग हैं, जिन्हें वह रोज अपनी बस्ती में देखता है! अचानक ही कलटुआ कोढ़ी की औरत चिल्लाई-'क्या है रे संकरवा? कहाँ जा रहा है?'

'...?'

'अरे भुक्खड़...आ मेरे बगल में खड़ा हो। तुम्हारी दादी तुम्हें भूखा मार देगी रे! आ बचवा...।'

''अब कलटुआ चिल्लाया-'रे संकरवा! हाथ में केतना समान आयेगा रे? जा, भाग के घर जा। घर से कोई कपड़ा ला के बिछा के बईठ ईहाँ।'उसने अपना फटा स्वेटर खोल वहीं जमीन पर बिछा दिया। वहां अब दानदाताओं के दिए चावल, चूड़ा, गूड़-मूढ़ी-तिल-मूंगफली आदि के लड्डू, बताशे, रुपये-पैसे आदि गिर रहे थे। हवा बह रही थी। वह अधनंगे ठिठुर रहा था। स्वेटर सामान में भर रहा था। मगर अब उसकी आंखों में कोई खौफ-सा खेल रहा था।''

वह उसकी बगल में खड़ा हो गया। एक तोंदियल सेठ चूड़ा बांटते चला जा रहा था। उसके नन्हें हाथों में भी चूड़ा के कुछ कण पड़े, जिसे उसने फाँक लिया। एक औरत बताशे बाँटते चली गई। उसके हाथों में भी एक बताशा पड़ा। वह भी पेट में। एक आदमी पैसा बांटते चला गया। उसके हाथ में भी पाँच रुपये का एक सिक्का पड़ा।

अब कलटुआ चिल्लाया-'रे संकरवा! हाथ में केतना समान आयेगा रे? जा, भाग के घर जा। घर से कोई कपड़ा ला के बिछा के बईठ ईहाँ।'

उसने अपना फटा स्वेटर खोल वहीं जमीन पर बिछा दिया। वहां अब दानदाताओं के दिए चावल, चूड़ा, गूड़-मूढ़ी-तिल-मूंगफली आदि के लड्डू, बताशे, रुपये-पैसे आदि गिर रहे थे। हवा वह रही थी। वह अधनंगे ठिठुर रहा था। स्वेटर सामान से भर रहा था। मगर अब उसकी आँखों में कोई खौफ-सा खेल रहा था। दादी का वह चेहरा भीख के नाम पर कैसा हो गया था? और वह यहां भीख माँग रहा है! वह क्या कर रहा है... क्या कर रहा है शंकर... क्या कर रहा है संकरवा... क्या कर रहा है रे तू...?'

अचानक ही वह उठा और उसने उस स्वेटर को खींचकर सड़क पर दे मारा। फिर स्वेटर उठाकर पागलों की तरह नदी के किनारे-किनारे भागने लगा। सड़क पर बिखरे हुए चूड़ा, चावल, मिठाईयां, बताशे, पैसे आदि सिर्फ भिखारियों को ही नहीं, दानदाताओं को भी मुँह चिढ़ा रहे थे।□

कथा मंच

इसका बाप नट था

किस्सा लाल बिल्डिंग स्कूल का है। हमारे एक साथी का नाम के. एस. त्यागी था। लेकिन वह रिजर्व कैटेगरी से नौकरी में आया था। सरनेम से हर कोई यही समझता था कि त्यागी सर ब्राह्मण है। कहने को तो विद्यालय है पर इस आलय में विद्या के अलावा भी बहुत सारी अनर्गल विद्याएं भी अपने करतब दिखाती रहती हैं। सवर्ण जाति के अध्यापक इस बात को नहीं पचा पा रहे थे। खासकर ब्राह्मण जिनके पूर्वजों के पास जातियां बनाने का जिम्मा था। उनके वंशज ये उस व्यवस्था को यथावत बनाये रखने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं। एक अनुसूचित जाति का मास्टर शान से ब्राह्मण का सरनेम लगा कर त्यागी सर के नाम से सम्मानित हो रहा है।

पहले कहते थे कि आदमी अपने कर्म से नीच होता है। अब मौका मिला है। शिक्षा प्रदान करने जैसे पुनीत कार्य कर रहे हैं। पर इस कर्म का कोई असर ही नहीं हो रहा है। चिकने घड़ों पर, सब बेकार। कितनी जातिवादी मानसिकता है। लोगों ने शिक्षा विभाग में शिकायत कर दी। अनूसूचित जाति का हमदर्द बनकर कि एक ब्राह्मण दलित का हिस्सा खा रहा है। उसके स्थान पर नौकरी कर रहा है। जबकि अनुसूचित जाति के लोगों को कोई परवाह ही नहीं। विभागीय जांच शुरू हुई। जाति-प्रमाण पत्र को संबंधित तहसीलदार के ऑफिस से वैरीफाई करवाया गया। दूध का दूध पानी का पानी हो गया। प्रमाण-पत्र जाली नहीं

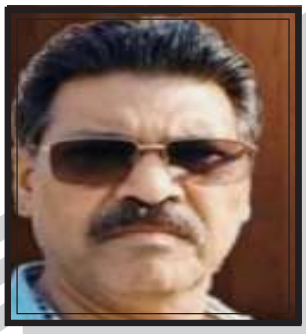

मदन लाल राज
राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली
मो0- 9414777031

''पहले कहते थे कि आदमी अपने कर्म से नीच होता है। अब मौका मिला है। शिक्षा प्रदान करने जैसे पुनीत कार्य कर रहे हैं। पर इस कर्म का कोई असर ही नहीं हो रहा है। चिकने घड़ों पर, सब बेकार। कितनी जातिवादी मानसिकता है। लोगों ने शिक्षा विभाग में शिकायत कर दी। अनूसूचित जाति का हमदर्द बनकर कि एक ब्राह्मण दलित का हिस्सा खा रहा है। उसके स्थान पर नौकरी कर रहा है, जबकि अनुसूचित जाति के लोगों को कोई परवाह ही नहीं। विभागीय जांच शुरू हुई। जाति-प्रमाण पत्र को संबंधित तहसीलदार के ऑफिस से वैरीफाई करवाया गया। दूध का दूध पानी का पानी हो गया।''

''अगले दिन कुछ लोग सैमिनार में नहीं गये। सीधे स्कूल गये। वहां जाकर अजय पंवार की सर्विस बुक ढूंढी, नहीं मिली। शायद अभी बनी नहीं है। फिर पर्सनल फाइल ढूंढी वह भी नहीं मिली। पता लगा कि ज्वाईनिंग वाले दिन ही फोटो स्टेट कराने के बहाने से ले गया था । आज तक नहीं लाया। लोग डिस्ट्रिक्ट पहुंच गये। यूनियन के लोगों के माध्यम से लिस्ट निकलवाई गई। कैटिगरी देखी तो अजय पंवार के नाम के आगे कैटिगिरी में एस. सी. ही लिखा था।''

था।

जांच अधिकारियों ने सरनेम पर आपत्ति की- 'आप अनुसूचित जाति के होकर ब्राह्मणों का गोत्र क्यों लगाते हो?'

के. एस. त्यागी ने कहा–'श्रीमान ये त्यागी मेरा उपनाम है। जाति नहीं। मुझसे पहले भी बहुत से लोग हैं जिन्होंने अपना उपनाम अपनी प्रकृति, अपने व्यक्तित्व और कौशल के आधार पर रखा हुआ है।'

'कुछ और रख लीजिए।' अधिकारियों ने सलाह दी।

के. एस. त्यागी ने फिर भोलेपन से कहा–'दूसरा शब्द मेरे लिए व्यवहारिक नहीं है। यह उपनाम मेरे कर्तव्य के अनुरूप है। मैंने अपने जीवन में बहुत बड़े-बड़े त्याग किये है। मैंने अपनी बहुत-सी आकांक्षाएं और इच्छाएं त्यागी हैं। इसलिए मेरे लिए त्यागी उपनाम ही सबसे उपयुक्त है। भारत अब आजाद है। हम अपने नाम के पीछे कोई भी उपनाम लिख सकते हैं। मैं फिर कह रहा हूँ। ये मेरी जाति नहीं है।'

मामला ठंडे बस्ते में चला गया। के. एस. त्यागी सर ने प्रसिद्धि भी पाई और त्यागी उपनाम ना हटाने की जिद्द भी पूरी हुई। अपने को श्रेष्ठ कही वाली जातियों के तथाकथित लोग फिर मन मसोस कर रह गये। कोई अभिभावक उनसे पूछता कि त्यागी सर कहां मिलेंगे तो उनकी छाती पर सांप-से लौटने लगते।

ये ब्राह्मण लोग जब किसी जजमान से प्रसन्न होते हैं तो शादी के मंत्र पढ़ देते हैं और किसी से नाराज हो जाएं तो श्राद्ध भी करा देते हैं। ऐसे दृढ़ निश्चयी कब तक शांति से बैठते। फिर दोबारा किसी छात्र के पिता से शिकायत करवा दी। कई महीनों तक जांच चली। जाति प्रमाण-पत्र फिर सही साबित हुआ। लेकिन के. एस. त्यागी मानसिक रूप से तो परेशान जरूर रहे। यही दूसरे पक्ष के लोग चाहते भी थे।

बात आई गई हो गयी। के. एस. त्यागी अपने मनोयोग से बच्चों को पढ़ाते रहे। कुछ शुभचिंतकों ने सुझाव दिया कि आप अपना ट्रांस्फर करवा ले। सवर्ण लॉबी आपके पीछे लग गई है। के. एस. त्यागी ने कहा–'आप ही ऐसी जगह बता तो दो जहां जातिवादी कीड़े ना कुलबुलाते हो।'

कुछ दिनों बाद अजय पंवार नाम एक अध्यापक लाल बिल्डिंग स्कूल में आया। जब भी कोई नया अध्यापक आता तो सरनेम से जाति का पता लग जाता है। किसी अध्यापक का नाम से पता नहीं चलता तो जब तक उसकी असली जाति का पता ना चल जाएं तब तक कुछ लोगों के कलेजे में ठंडक नहीं पड़ती। असल में वे ही असली जातिवादी मानसिकता से ग्रसित होते हैं। मेरे एक ब्राह्मण मित्र ने एक बार मुझे बताया–'हम अपने नाम के आगे या पीछे जाति सूचक शब्द या गौत्र इसलिए भी लगाकर रखते है कि लोग हमें चूहड़ा-चमार ना समझें।'

पंवार सरनेम जनरल कैटेगरी के लोग ज्यादा लगाते हैं। जनरल कैटेगरी के सभी अध्यापक खुश। उसको चाय पिलाई गई, लेकिन कुछ लोगों के दिमाग में कीड़ा होता है जब तक सॉलिड जानकारी नहीं निकाल लेते तब तक चैन से नहीं बैठते। अब की तरह कंप्यूटर वाली लिस्ट नहीं थी। जिस मैनुअल लिस्ट में नाम था वो डिस्ट्रिक्ट ऑफिस में थी। विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि पंवार सर की पोस्टिंग रिजर्व कैटेगरी से हुई है। इस बार खुश होने की बारी रिजर्व कैटेगरी के अध्यापकों की थी। लेकिन पंवार सर की रुचि स्टाफ के दूसरे पक्ष में। रिजर्व कैटेगरी के अध्यापक उस पर खिन्न थे और गुलाम होने का आक्षेप लगाते।

शिक्षा विभाग में अध्यापकों के सैमीनार या ट्रेनिंग होती है तो पूरे जोन और डिस्ट्रिक्ट के अध्यापक वहां इकट्ठा होते हैं। एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते भी हैं। नये अध्यापकों का परिचय भी आपस में हो जाता है। इस सैमीनार में लाल बिल्डिंग स्कूल के अजय पंवार जी भी विद्यमान थे। जातिवादी कीड़ा यहां फिर कुलबुलाया। कुछ रिजर्व कैटिगिरी के अध्यापक दूसरे विद्यालयों से आये अपने साथी अध्यापकों से

शेष पृष्ठ सं.64 पर

सृजन से संवाद

तेजपाल सिंह 'तेज' का साहित्य
आर्थिक सरोकारों का दर्शन

डॉ. देवी प्रसाद वर्मा
नीमका थाना, राजस्थान
मो0- 9414777031

भारतीय समाज की यह विडंबना ही है कि आज भी यहाँ बहुत से ऐसे लोग हैं जो बराबरी के लिए समाज में मौजूद भेदभाव से संघर्ष कर रहे हैं। जब हम भारतीय समाज की प्रवृति और दशा का विश्लेषण करते हैं, तो हम पाते हैं कि एक तरफ तो सत्ता और संसाधनों पर कुछ लोगों (अल्पजन) का अधिकार है, वहीं दूसरी तरफ बहुसंख्यक (बहुजन) आबादी सत्ता और संसाधनों में हिस्सेदारी से वंचित है।

भारतीय समाज में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक आदि ऐसे वर्ग हैं, जो आज भी समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं हैं। इन वर्गों के पास साधन-सुविधाओं का अभाव है। इन वर्गों की स्थिति सुधारने, इन्हें मुख्यधारा में शामिल करने हेतु अनेक संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं। विभिन्न सरकारों ने भी समय-समय पर आयोगों का गठन किया है। इन आयोगों ने इन वर्गों की स्थिति का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट्स सरकार को सौंपी हैं। यद्यपि वर्गों की स्थिति में परिवर्तन अवश्य हुआ है, परन्तु वह नाकाफी है। इन्हीं वर्गों के साथ अन्य भी बहुत से लोग हैं, जिन्हें आवश्यक सुविधाएं भी मयस्कर नहीं हैं। आज भी बहुत से लोग आर्थिक विषमता के शिकार हैं।

कवि तेजपाल सिंह 'तेज' दीन-दुखियों तथा शोषितों-पीड़ितों के प्रति सहानुभूति ही नहीं रखते अपितु वे उनके प्रति संवेदना ज्यादा प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं। दरअसल सहानुभूति वह अवस्था है, जिसमें मनुष्य किसी की कष्टपूर्ण अनुभूति का अनुभव शुद्ध हृदय से करता है और उससे उसी प्रकार प्रभावित होता है, जिस प्रकार दूसरा व्यक्ति प्रभावित हो रहा हो। अनुभूति की भावना में अनुभूति रखने वाले व्यक्ति को सन्तुष्टि मिल सकती है, लेकिन संवेदनाओं में असंतुष्टि का भाव बना ही रहता है। संवेदना पूर्णता के अर्थ में एक समूची वेदना है.... एक तड़प है। संवेदनाओं में पूर्णता की अपेक्षा रहते हुए भी अभाव का संकट बना रहता है, असंतुष्टि बनी रहती है। इन अर्थों में कवि तेजपाल सिंह 'तेज' की कविताओं में समाज के गरीब, निरीह और दलित-दमित वर्ग के प्रति संवेदना का भाव ज्यादा है।

मानव एक विवेकशील प्राणी है। वह अपना हित-अहित सब समझता है। एक आदर्श स्थिति के अनुसार मनुष्य को न केवल अपने स्वार्थ का ही ध्यान नहीं रखना चाहिए वरन् सभी के हितों को ध्यान में रखकर काम करना चाहिए। कुछ व्यक्तियों में अपने हित-साधन की प्रवृति बहुत अधिक प्रबल होती है। ऐसे लोग अपने छोटे से लाभ के लिए दूसरे को बहुत अधिक नुकसान करने पर आमादा हो जाते हैं। कवि तेजपाल 'तेज' के अनुसार आज का इंसान इतना स्वार्थी हो गया है कि उसका अपना स्वार्थ पूरा होना चाहिए भले ही दूसरे का नुकसान हो। उसका अपना घर आबाद रहना चाहिए, भले ही दूसरे का घर जले, तो जले। कवि 'तेज' इस स्वार्थपूर्ण स्थिति को बहुत ही कुशलता से बयान करते हुए लिखते हैं:-

'छीनकर मुँह से निवाला आपने,
शर्म को घर से निकाला आपने।

चंद चुपड़ी रोटियों के वास्ते,
स्वयं को ही बेच डाला आपने।

शहर अपना जगमगाने के लिए,
गाँव सारा फूंक डाला आपने।'

तेजपाल सिंह 'तेज' के अनुसार गरीबी और भूखमरी किसी क्षेत्र विशेष की समस्या नहीं है, बल्कि हर गाँव-शहर में गरीबी के भयावह हालात देखे जा सकते हैं। इनके गजल संग्रह 'तूफां की जद में', पृ. सं. 41 पर लिखी गई ग़ज़ल 'हर चौराहे भूख खड़ी है' में इन्होंने न केवल गरीबी और भूखमरी का चित्रण है अपितु इसके दुष्प्रभावों को भी दर्शाया गया है:-

'शहर-शहर, बस्ती-वस्ती,
हर चौराहे भूख खड़ी है,
दुल्हनिया सी सजी-धजी कि
हरसू सबसे आँख लड़ी है।

बात-बात पर नभ से बोझिल,
आग के गोले उगल रही है,
वर्षों से भूखी हो जैसे,
मानवता पर टूट पड़ी है।

माथे पर बेम्याद लकीरें,
आँखें हैं कि तल्ख समन्दर,
प्रलंकारी कृत्य घिनौने,
करके सीना तान खड़ी है।

कूकेगी अब क्या कोयलिया,
कूकेगा अब कहाँ पपीहा,
जंगल-जंगल आग लगी है,
मृत्यु तंबू तान खड़ी है।

जला आसमां दरकी धरती,
जीवन रूठा सांसे टूटी,
अब क्या महकेगी पुरवैया,
बगिया-बगिया त्रस्त पड़ी है।'

कवि का हृदय इतना संवेदनशील होता है कि वह छोटी से छोटी बात के प्रति भी भावुक हो उठता है। जिनके पास सब साधन-सुविधाएं हैं, उन्हें कहीं अभाव दिखाई नहीं देता है या यूँ कहें कि उन्हें दूसरों के अभावों की कोई चिन्ता नहीं होती है। बहुत से ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो अभावों का सामना तो कर रहे होते हैं किंतु वो अभावों से विमुख होकर समर्थ होने का भाव भी पालते रहते हैं। बहुत-सी ऐसी भी बस्तियां और गाँव हैं, जहाँ आज भी मूलभूत सुविधाएं नहीं हैं। दूसरी ओर बहुत से ऐसे शहर हैं जहाँ पर सभी साधन-सुविधाएं विद्यमान/मौजूद हैं। कवि कहना चाहता है कि ऐसी जगहों की चकाचौंध और विकास को देखकर सम्पूर्ण देश के विकास का अनुमान लगाना उचित नहीं है। ऐसे लोग जो कुछ विकसित लोगों, बस्तियों, गाँवों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करके सम्पूर्ण देश के विकसित हो जाने की बात करते हैं, उन्हें आड़े हाथों लेते हुए कवि 'तेज' व्यंग्यात्मक रूप से कहते हैं:-

'पहनने को पहनते हैं कोट पर,
कोट में अपने मगर अस्तर नहीं।

चन्द गमले देखकर कहने लगे,
आज धरती पर कहीं बंजर नहीं।'

तेजपाल सिंह 'तेज' सामाजिक व्यवस्था, राजनीति, सत्ता, सम्प्रदायवाद की कड़ी आलोचना करते हैं। 'तेज' की कविता में भेदभावपूर्ण व्यवस्था के प्रति आक्रोश दिखाई देता है। 'तेज' झौंपडियों और महलों में रहने वाले लोगों के जीवन और कलाचार की तुलना करते हुए एक गजल में कहते हैं:-

'महलों में हलचल है नयी हवाओं की,
कि छप्पर बूढ़ी संस्कृति को ढोते हैं।'

आज भी देश में बहुत से लोग ऐसे हैं, जिनके सिर पर छत नहीं है, जो सुते आसमान के नीचे जीवन यापन करने को मजबूर हैं। उन लोगों को यह पीड़ा तो है ही कि उनके पास रहने को घर नहीं है परन्तु कवि के अनुसार उन्हें इस बात की भी पीड़ा है कि उन्होंने अपनी मेहनत से दूसरे लोगों के लिए बहुत से घर बनाए हैं और इन्हीं घर निर्माताओं के पास रहने को आशियाना नहीं है।

तेजपाल सिंह 'तेज' को ऐसे गरीब और वेबस लोग आज भी मशालें थामे हुए ही दिखाई देते हैं। कवि 'तेज'

इनकी व्यथा का चित्रण करते हुए लिखते हैं-

'बैठे हैं हम थामे मशालें आज तक,
ना कर सके घर में उजाले आज तक।
यों उम्र भर जारी रही मेहनतकशी,
ना बन सके अपने शिवाले आज तक।'

देश में विभिन्न स्थानों पर अनेक लोग झुग्गी-झोंपड़ियों में जीवन-यापन करने को मजबूर हैं। मजदूर वर्ग को यह समझ में नहीं आता कि जब वह शहर में बनने गगनचुम्बी इमारतों का निर्माता हैं, फिर उसका निवास शहर से हटकर क्यों है। कवि इनकी पीड़ा को अपने शब्दों में उजागर करते हुए कहता है:-

'मैं ही तेरे शहर की बुनियाद हूँ लेकिन,
तेरे शहर से मेरी झोपड़ी हटकर क्यों है।'

जब कोई साधन-संपन्न व्यक्ति अपने प्रियजनों को खत लिखता है। उस खत में वह अपनी कुशलता और अन्य बहुत से समाचारों के साथ खत पाने वाले के लिए भी अपनी ओर से बहुत-सी बातें लिखता है। प्रेयसी अपने प्रियतम को खत लिखती है तो वह प्यार प्रेम की बातें लिखती है। व्यापारी अपने व्यापार के संबंध में लिखता है, (यद्यपि पत्रलेखन का आधुनिक युग में महत्त्व कम होता जा रहा है) परन्तु गरीब व्यक्ति तो पत्र में भी अपनी गरीबी का ही चित्रण करता है। अपने लिए कहीं रोजगार की बात करता है। खत पाने वाले से अपने लिए काम तलाश करने की बात करता है। वैसे आजकल खत का स्थान इलैक्ट्रोनिक मीडिया ने ले लिया है। गरीब व्यक्ति के लिए सबसे बड़ा सवाल रोटी का होता है। उसके लिए चाँद सुन्दरता का प्रतीक नहीं होता, वरन् चाँद उसके सामने गोल-गोल रोटी के रूप में उभरकर आता है:-

'कोई विचारा खत लिखता है,
खत में अपना कद लिखता है।
चंदा को लिखता है रोटी,
रोटी को मकसद लिखता है।'

यूँ तो देश के आजाद होने के बाद से ही गरीबी दूर करने के वायदे लगातार किए जा रहे हैं, परंतु न जाने क्या बात है कि गरीबी समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही है। गरीबी दूर करने का नारा आज भी दिया जा रहा है। प्रत्येक शासन गरीबी मिटाओ का नारा देता है। कवि का मत है कि यह राजनैतिक दलों द्वारा सत्ता पाने हेतु एक नारा मात्र है:-

'गो भूख के मारे भी हैं जिन्दा यहाँ,
भूख का मसला मगर मसला तो है।'

तेजपाल सिंह 'तेज' ने अपनी गजलों व कविताओं में ही नहीं अपितु अपने गद्य लेखन में भी शोषण का सदैव विरोध किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में शोषकों और पाखण्डियों पर तीखे प्रहार किए हैं। उनकी कविताओं में मानवीय संवेदना का तीव्र स्फुरण हुआ है।

'मुद्दा रोटी का जहाँ का तहाँ रहा,
थपकियाँ दे-दे के सुलाए गए हैं हम।'

कुछ वर्षों पहले हमारा देश अंग्रेजों के अधीन था। गुलामी बड़ी कष्टदायक होती है। अंग्रेजों की नीति तो शोषण करने की ही थी। स्वतंत्रता के दीवाने असंख्य देश भक्तों ने अपने जीवन की कुर्बानी देकर देश को आजादी दिलाई। आजाद भारत में गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्याए नहीं रहेंगी, ऐसी आशा थी किंतु वह आशा पूरी न हो सकी। भारत में भुखमरी, बीमारी, बेरोजगारी जैसी अनेक समस्याएँ आज भी हैं। कवि 'तेज' की कविताओं में देश के नव-निर्माण तथा नव-जागरण का भाव सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है परंतु कवि देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, गरीबी, बेकारी, भुखमरी, अन्याय, अत्याचार का भी खुलासा करता है। सबका अपना-अपना देश है क्योंकि सभी का जीवन-स्तर एक समान नहीं है। एक समान तो क्या, गरीबी और अमीर के जीवन-स्तर में जमीन-आसमान का अन्तर है। तेजपाल सिंह 'तेज' अपनी गजल 'खट्टे-मीठे कड़वे देश' में इस भयानक सच को अभिव्यक्त करते हुए कहता है:-

'खट्टे-मीठे कड़वे देश,
सबके अपने-अपने देश।
सत्ता की मारा-मारी में,
दूर हुआ आँखों से देश।
गैरों की चर्चा क्या करना,
जूझ रहा अपनों से देश।
सोने की चिड़िया तुम जानो,
हम जाने भिखमंगे देश।'

मताधिकार का प्रयोग करना सभी व्यक्तियों का हक है। कवि के अनुसार वोटों के चलते राजनेता चुनावों के समय जनता से अनेक वादे करते हैं, परंतु जीत हासिल कर लेने के बाद इन वादों को भूल जाते हैं। गरीब व्यक्ति वोट की फसल के समान है, जो समय आने पर काट ली जाती है। कवि आजादी के बाद से बदले शासन-प्रशासन का जिक्र करते हुए लिखता है कि इन गरीब लोगों के वोटों ने बहुत से राज

बदल दिए हैं, परन्तु इनकी गरीबी दूर नहीं हो पा रही है। आजाद देश में बेरोजगारी की समस्या हल तो नहीं हुई, बढ़ और गई है। सुशिक्षित लोगों को एक तो रोजगार मिलता ही नहीं, मिलता है तो बहुत कम। उनके लिए भी परिवार का निर्वाह करना असंभव-सा होता है। बहुत से परिवार आज भी ऐसे हैं, जिन्हें दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पा रही हैं। कवि ऐसे साध नहीन लोगों की व्यथा को उजागर करते हुए लिखता है:-

'सियासतें बदली मगर दफ्तर नहीं बदले,
कि हुक्मरानी कोट के अस्तर नहीं बदले।

भुखमरी के वोट ने बदले हैं तख्तो-ताज,
पर भुखमरी के मील के पत्थर नहीं बदले।

जेरे बहस है मुद्दआ रोटी का आज भी,
अभी तलक तो भूख के बिस्तर नहीं बदले।'

लगभग सभी गरीब लोगों के जीवन की एक-सी कहानी है। सभी अभाव में पैदा होते हैं और इनमें से बहुत से अभाव में ही इस दुनिया से रुखस्त हो जाते हैं। कवि साधनहीन परिवार के व्यक्ति की व्यथा और पारिवारिक पृष्ठभूमि का बयान करते हुए लिखता है:-

'रोटी के बदले यां अक्सर,
एक अदद उपवास मिला।

फाकामस्ती का कुछ-कुछ तो,
मुझको है इतिहास मिला।'

असमान वितरण बहुत सी समस्याओं की जड़ है। इस असमान वितरण का मुख्य कारण है, भ्रष्टाचार। वैसे भ्रष्टाचार शब्द बहुत अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों में शुमार है। जहाँ कहीं भी देखें भ्रष्टाचार नजर आता है। कुछ लोगों का तो मानना है कि भ्रष्टाचार से वे ही व्यक्ति दूर हैं, जिन्हें अवसर नहीं मिला है। कवि 'तेज' की समस्या है कि उन्होंने पढ़ तो बहुत लिया है, परंतु वे इस दुनिया को समझ नहीं पाए हैं, जो कहती कुछ है और करती कुछ है या दिखती कुछ और है तथा होती कुछ और है। कवि के अनुसार आज लोकतंत्र में चारों ओर भ्रष्टाचार दिखाई देता है:-

'पग-पग जो निर्वाध बढ़ा है,
धनवानों के हाथ चढ़ा है।

बाँच न पाया इस दुनिया को,
पढ़ने को यूँ बहुत पढ़ा है।

सब कुछ कड़वा-कड़वा सा है,
कोई करेला नीम चढ़ा है।

लोकतंत्र के गलियारों में,
भ्रष्ठजनों को भाव बढ़ा है।'

कभी अनावृष्टि के कारण तो कभी अतिवृष्टि के कारण किसानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। नदियों में आने वाली बाढ़ के कारण किसानों की पकी-पकाई फसल बर्बाद हो जाती है। कवि का मानना है कि इन प्राकृतिक आपदाओं के लिए सरकार और शासन-प्रशासन भी बहुत हद तक जिम्मेदार हैं, जो इन समस्याओं का स्थाई हल नहीं निकालते हैं:-

'लील गई चढ़ती नदी पका-पकाया धान,

भूख-प्यास की मार से, टेड़ा भया किसान।'

धीरे-धीरे बिक गया घर का सारा माल,

होरी खाक उड़ात है खाली पड़ी दुकान।

यां चोरों की पंचायत है, गीदड़ हैं सरपंच, थाम हाथ उल्टी कलम, लिखते चोर विधान।'

ऐसे लोग, जिनके पास न रहने को घर है और न पहनने को पर्याप्त वस्त्र, ऐसे अभावग्रस्त लोगों की पीड़ा को बयान करते हुए तेजपाल सिंह शतेजश लिखते

'पटरी बिस्तर, ईट का तकिया,
ता पर सिर घर सोवे हरिया।
कि टूटी जूती, फटा घाघरा,
कब तक सीवें भूखी धनिया।'

धनी और निर्धन में हमेशा टकराव रहा है। हमेशा दो वर्ग विद्यमान रहे हैं, एक साधन सम्पन्न, जिसे उच्च वर्ग कहा जाता है और दूसरा साधनहीन, जिसे निम्न वर्ग के नाम से जाना जाता है। कवि के अनुसार इस भौतिकतावाद की चकाचौंध में इंसानियत रुखस्त हो गई है। भौतिकतावाद का प्रभाव शहरों के साथ ही गाँवों में भी दिखाई देने लगा है:-

'गाँवों में नए दौर का प्रभाव देखिए,
हर-नजर हर सिम्त यां बदलाव देखिए।

इंसानियत यूँ ही तो ना चुक्ता हुई,
निर्धन का धनवान से टकराव देखिए।'

तेजपाल सिंह 'तेज' ने आर्थिक शोषण को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। इन्होंने शोषण से होने वाले दुष्प्रभावों के करुणामय चित्र प्रस्तुत किये हैं। अनके अनुसार यह बात बहुत ही चिंताजनक है कि एक मनुष्य ही दूसरे मनुष्य का शोषण करता है। श्रमिक मेहनत करता है, परन्तु उसे अपने श्रम का पूरा लाभ नहीं मिलता। पूंजीपतियों द्वारा उसका शोषण कर लिया जाता है। कवि लिखता है:-

'काम तो है पूरा का पूरा,

आधी मगर मजूरी है।

रोटी के मुद्दे पर चर्चा,
सदियाँ गई, अधूरी है।

जीना तो है एक चुनौती,
मरना एक मजबूरी है।'

समाज में अनेक अन्य समस्याओं के साथ एक बड़ी समस्या कर्ज की भी है। कवि तेजपाल सिंह 'तेज' के अनुसार कर्ज लेना तो आसान है, परन्तु उसे चुकाना बहुत मुश्किल होता है। परंतु गरीब के लिए न तो कर्ज लेना आसान है और न उसका चुकाना। यह अलग बात है कि कुछ लोगों को घर बैठे कर्ज मिलता है। गरीब व्यक्ति जब कर्ज लेता है तो उसके लिए उसे चुकाने की समस्या हो जाती है क्योंकि न तो उसके पास कोई स्थाई रोजगार होता है और न ही पर्याप्त मजदूरी। कवि ऐसे कर्जदारों की समस्याओं को सामने रखते हुए लिखता है:-

'बहुत मुश्किल से जिया जाता है,
हक मिलता नहीं लिया जाता है।

कर्ज लेना तो सहज है लेकिन,
कर्ज किश्तों में दिया जाता है।'

दैनिक जीवन की चक्की में पिसते आम आदमी पर गजलकार की बड़ी सूक्ष्म और पैनी नजर है। ग़ज़लकार 'तेज' ने गरीबों की समस्या को बहुत सीधे और सहज शब्दों में चित्रित किया है:

'भूख की बेटी पतकर ज्यूँ जवान हुई,
रोटी उसको बुरी नजर से ताक रही है।'

...

'हरसू दौलत का तमाशा है वहीं,
खाली जेबों में पता क्या रखना।'

शोषित और गरीब सामान्य स्थितियों में भी बहुत मुस्किल से जीवन-यापन कर पाते हैं। गरीब आदमी को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती। अभावग्रस्त लोगों के पास घर में आटा न होने की वजह से चूला न जल सकने के कारण भूखे ही रहना पड़ता है। कवि इन विदूपताओं पर प्रकाश डालते हुए करता है:-

'राजनीति चूल्हे पर चढ़के नाच रही है,
और चूल्हे वाली महंगाई से कोप रही है।'

...

'कोई करवट पे करवट बदलता रहा,
कोई बिस्तर पे बिस्तर बदलता रहा।

कोई लिखता रहा फूल पर ताजगी,
कोई फूलों को शवभर मसलता रहा।'

कवि उपेक्षित, दलित तथा शोषित जन-समुदाय का पक्षधर और पूंजीवादी व्यवस्था के घोर विरोधी है। भ्रष्टाचार, आडम्बर, साम्प्रदायिकता, भाषावाद और सदियों के प्रति आक्रोश 'तेज' की सभी रचनाओं में देखा जा सकता है। उनकी अधिकतर रचनाओं में समाज में व्याप्त कुरीतियों और विद्रूपताओं का विरोध किया गया है। बहुत से राजनेता विभिन्न अवसरों पर अपने भाषणों और बयानों में उन बर्गे में दीपक जलाने की बात करते हैं. जसे अंधेरा है परंतु वास्तविकता इसके विपरीत है। कवि 'तेज' ऐसी बस्तियों का जिक्र करते हैं जो विकास में कोसों दूर हैं। कवि इसका कारण राजनैतिक इच्छाशक्ति और भ्रष्टाचार को मानत हुए कहता है:-

'अन्तर में कुष्ट भाव है, आँखों में सादगी,
हर सिम्त भ्रष्टाचार की ऊँची दुकान है।

जहाँ मुद्दतों से कोई भी आया-गया नहीं,
इन बस्तियों के बीच एक ऐसा मकान है।'

कवि व गजलकार तेजपाल सिंह 'तेज' की रचनाओं को पढ़ने के बाद कुछ हद तक यह महसूस हुआ कि किसी भी पीड़ित व्यक्ति की पीड़ा, उनकी अपनी पीड़ा है। स्वयं कवि का बचपन भी अभावों में ही गुजरा है तथा रोजी-रोटी पाने के लिए इन्हें भी अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा है। इनकी अनेक गजलों और कविताओं का अध्ययन करते समय लगता है कि जैसे कवि ने अपनी ही व्यथा प्रकट की हो। कवि का मानना है कि गरीब और शोषित व्यक्ति शोषण रूपी तिलिस्म में इस प्रकार फँसा हुआ है कि उसका इस शोषण की चक्की से निकल पाना आसान प्रतीत नहीं होता है:-

'अश्क पीकर बचपना हमने जिया फुटपाथ पर,
धूप खाकर उम्र का हर पल जिया फुटपाथ पर।

कि ये कोई मिसरा नहीं दरअसल एक सत्य है,
बाकसम हर मृत्यु को हमने जिया फुटपाथ पर।

गो दर्द का दरिया, मेरे आगोश में बहता रहा,
पे दर्द की हर थाह को हमने जिया फुटपाथ पर।'

कवि ने जनता की गरीबी, भूखमरी का चित्रण बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। कवि द्वारा किया गया यह चित्रण बहुत ही डरावना है। कवि ने अपनी कविताओं का विषय समाज के उपेक्षित तबके को बनाया है। उनके अनुसार रात-दिन मेहनत करते-करते, गंदी और उपेक्षित बस्तियों में रहते-रहते, गरीबों का मनोबल टूट जाता है।

रोजी-रोटी की तलाश में केवल और केवल शहर के होकर रह जाते है। किसी भी हारी बीमारी के हालात में अपने पुश्तैनी गाँव/निवास की ओर कदम भी नहीं रख पाते। ऐसा भी देखा जाता है कि उनके बूढ़े माँ-बाप उनसे मिलने की चाहत में दुनिया छोड़ जाने को मजबूर होते हैं, किंतु उनके लाचार बेटा-बेटी अपनी मजबूरियों और व्यस्तताओं के चलते कुछ भी न करने को मजबूर होते हैं। शहर में रहने के बावजूद भी बहुत से लोग शहरों की मूलभूत सुविधाओं और चकाचौंध से दूर रहते हैं, कारण कि उन्हें अपनी रोजी-रोटी कमाने से ही फुरसत नहीं मिलती। शहर में रहकर भी बहुत से व्यक्ति सही मायने में जीवन नहीं जी पाते हैं। मजदूर वर्ग शहर की गन्दी बस्तियों में साकर शहरी तो जरूर बन जाता है, परन्तु उसके पुश्तैनी हालातों में विशेष परिवर्तन नहीं आ पाता।

गाँवों में आज भी बहुत से ऐसे लोग हैं जो अपनी रोजी-रोटी के चक्कर में ही लगे रहते हैं। इन्हें कहीं भी आने-जाने का अवकाश नहीं मिलता है। अनेक लोगों ने दिल्ली जैसा शहर तो क्या अपने आस-पास का कोई बड़ा कस्वा भी नहीं देखा है। ऐसे साधनहीन लोगों के लिए देश की राजधानी दिल्ली जाकर राजपथ देखना किसी सपने से कम नहीं है। तेजपाल सिंह श्तेजश की अधोलिखित पंक्तियों में इस स्थिति का बहुत ही संवेदनापूर्ण चित्रण देखने को मिलता है:-

'फाकाकशी को ही जिया है आज तक मैंने,
कि देखा नहीं है शहर क्या बाजार तक मैंने।

कहने को हम आजाद हैं, आबाद हैं, लेकिन,
है देखी नहीं दिल्ली कभी, ना राजपथ मैंने।'

कवि शोषण को समाप्त करने की दिशा में जमकर पत्थर उछालता है, शोषण से समाज को मुक्त करना चाहता है। तेजपाल सिंह 'तेज' की रचनाओं पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रभाव भी है। गरीबी, बेबसी और लाचारी के शिकार निम्न वर्ग की त्रासदी को तेजपाल सिंह 'तेज' ने अत्यंत मार्मिक संवेदना के साथ व्यक्त किया है:-

'फटी जेब से खाली थैला,
घर से मैं बाजार गया।

पर आने वाला नहीं आया,
यूँ किया घरा बेकार गया।

'तेज' भला करता भी क्या,
खुद ही खुद से हार गया।'

वंचित वर्ग की समस्या है कि वह रात-दिन मेहनत करता है, उसके बावजूद भी वो अपना और अपने परिवार का पेट नहीं भर पाता और दूसरी तरफ एक ऐसा वर्ग भी है जो बिना मेहनत या बहुत ही कम मेहनत में ही सब सुविधाओं का उपभोग करता है। जब ऐसा वर्ग गरीबों के हक और अधिकार तय करता है, तो उससे बहुत उम्मीद नहीं की जा सकती। उनके द्वारा बनाई गई योजनाएं कागजों पर ही होती हैं, घरातल पर नहीं उतर पाती। कवि ने गरीबों की इस वेदना पर दृष्टिपात करते हुए लिखा है:-

'आज सूरज जमी पर उगा है यहाँ,
कागजों पर बहुत कुछ हुआ है यहाँ।

किसी ने अँधेरों को दी जिंदगी,
चाँदनी को किसी ने ठगा है यहाँ।

दाल-आटे की कीमत गगन हो गई,
साँस लेने को है हवा भी कहाँ।'

अधोलिखित गजल 'जल रही है ये जमीं और गगन है जल रहा' में कवि ने एक शोषित, पीड़ित व श्रमनिष्ठ व्यक्ति की विवशता और वेदना का मार्मिक चित्रण किया है। मानवीय संवेदना और भावगत सौंदर्य की दृष्टि से इस ग़ज़ल का विशेष महत्त्व इसलिए भी है कि इसका रचनाकार स्वयं भी एक ऐसे सामाजिक परिवेश से आता है, जहाँ यह सब होते हुए उसने अपनी खुली आँखों से देखा है:-

'जल रही है ये जमीं और गगन है
जल रहा,
चिलचिलाती धूप में है तन किसी
का जल रहा।

लड़खड़ाता, हांफता, नंगा बदन बोझा
लिए,
दो जून रोटी के लिए तपती सड़क
पे चल रहा।

जिनके हाथों से बने इस शहर के
महलो-मकां,
उनके ही घर का झोंपड़ा है फूस को

तरस रहा।

पल भर इन्हें भी देखलो ए! शहर के मुर्दादिलो,
दीपक तुम्हारे 'तेज' का जिनकी
वजह से जल रहा।'

शोषित और गरीब व्यक्ति की एक समस्या यह भी है कि उसकी परेशानियों को दूर करने वाला कोई नहीं है। कहने को ये भारत देश सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, किंतु हो गया है बहुत भ्रष्ट। भ्रष्टाचार पर बात करने की बात तो अलग है, दुनिया के इस कोलाहल में उसका करुण विलाप सुनने वाला कोई भी नहीं है। ऐसे में 'तेज' सवाल करते हैं कि:-

'ये कैसी बस्ती है?

खेती है ना क्यारी है,
भूखी हरप्यारी है,
धनपत के पाँवों में,
अंबर है ना धरती है।

ये कैसी बस्ती है?'

'तेज' के काव्य में पौरुष, शान्ति और तेजस्वी भावों के साथ-साथ विद्रोह का स्वर भी बखूबी सुना जा सकता है। कवि जन्म से ही विद्रोही रहे हैं। अपनी इसी विद्रोही भावना के कारण उन्होंने अनेक रचनाओं में साफ-साफ कहा है कि शोषण को सहना पाप है। जो मनुष्य शोषण को सहता है, वह एक प्रकार से मनुष्यता को समाप्त कर देता है। कवि ने शोषण को मनुष्यता का मरण बतलाते हुए कहा है कि शोषण के खिलाफ सदैव विद्रोह करना चाहिए। अपनी विविध कविताओं में कवि ने एक प्रकार से विद्रोह की भावना को ही ओजस्वी भाषा में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार कवि जब प्रतिशोध की बात करता है तब भी वह विद्रोही का ही पक्ष लेता है। कवि ने विद्रोह और प्रतिशोध को शोषित मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार माना है:-

'सुनो! तुम्हारे महलों में
मेरे खून से सनी ईंटें लगी हैं

हवाओं में
अभी भी मेरे पसीने की गंध बाकी है

बस! इतना समझ लो
और
इससे पहले कि मेरा सीना फट पड़े
छोड़ दो मेरा शोषण
बन जाने दो मेरा घर।'

कवि मानता है कि शोषण मानव के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है, परंतु इसी के साथ वह कहता है कि इस शोषण को मिटाने के लिए कोई बाहरी ताकत या उपाय काम में आने वाला नहीं है। इस शोषण तंत्र को समाप्त करने के लिए शोषितों को ही आगे आना पड़ेगा। कवि 'तेज' किसी मसीहा, किसी अन्य व्यक्ति का इन्तजार न कर शोषण को समाप्त करने के लिए स्वयं संघर्ष करने को तैयार दिखाई देते हैं। वे शोषकों को शोषण बन्द करने की सलाह देते हैं और अगर वे शोषण करना बन्द नहीं करते हैं तो उन्हें परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहने की चेतावनी देते हैं:-

'सुनो! इन शब्दों को समझ लो
छोड़ दो मेरा शोषण
इससे पहले कि ये शब्द बोलने लगें
मुझे मेरी सत्ता लौटा दो
अभी भी समय है
सौंप दो मुझे मेरा मान-सम्मान
अन्यथा बहुत भारी पड़ेंगे ये शब्द।'

कवि 'तेज' ने भूखे, नंगे, दबे-कुचले, शोषितों को अपनी कविता का विषय ही नहीं बनाया, अपितु कवि ने शोषितों और गरीबों के दुख और पीड़ाओं को पूर्ण संवेदना के साथ अपनी कविता के माध्यम से समाज के समक्ष भी रखा है। कृषि न केवल गरीबों, पीड़ितों की समस्याओं को समाज के समक्ष रखना चाहता है, अपितु वह विषमता की इस कहानी को समाप्त ही कर देना चाहता है।

'दुल्हिन होती तो मैं सजती,
पायलिया के जैसी बजती।

लेकिन मैं रोटी की मारी,
धनीराम से कैसे बचती।

गुरबत में इज्जत का लुटना,
रही देखती सारी बस्ती।

पैसे से कानून बिके हैं,
पैसा है तो सत्ता सस्ती।

बातों से नहीं बात बनेगी,
यार! उठा हाथों में दस्ती।'❑

सृजन से संवाद

राजेश पाल की कविता
सामाजिक यथार्थ और प्रतिरोध की चेतना

डॉ. नरेंद्र वाल्मीकि
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
मो0- 9720866612

साहित्य विचारों की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति है, जो समाज को दिशा देने की सामर्थ्य रखता है। विचार ही वह मूलभूत शक्ति है जो दुनिया को बदलने की ताकत देता है। यह ताकत साहित्यकार की कलम में तब और अधिक प्रभावशाली हो जाती है जब वह सामाजिक कुरीतियों, अन्याय और विषमता के विरुद्ध मुखर होता है। हिंदी साहित्य में डॉ. राजेश पाल का नाम एक ऐसे ही प्रतिबद्ध साहित्यकार के रूप में सामने आता है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त सामाजिक असमानता, जातिवाद, दलित उत्पीड़न और फासीवादी प्रवृत्तियों के खिलाफ गहरी चेतना और सवालों को स्वर प्रदान किया है।

राजेश पाल न केवल कवि हैं, बल्कि सामाजिक यथार्थ के सजग प्रवक्ता भी हैं। वे अपने काव्य में केवल कल्पना नहीं रचते, बल्कि यथार्थ की कठोरता को प्रश्नों और प्रतिरोध की भाषा में प्रस्तुत करते हैं। उनके चार कविता संग्रह :- 'पानी भीतर आग', 'तुम भी सोचो', 'पानी का नहीं देश' और 'आजादी में आजादी' तथा ग़ज़ल संग्रह 'सभी हैं बाजार खेत से' उनके व्यापक साहित्यिक हस्तक्षेप का प्रमाण हैं।

उनकी कविता 'जागो! तुम्हारे लिए लोग लड़ रहे हैं...' में कवि जन-साधारण को उसकी निष्क्रियता से झकझोरता है और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने का आह्वान करता है। यह कविता उनके सामाजिक सरोकारों की स्पष्ट घोषणा है:

जागो! तुम्हारे लिए लोग लड़ रहे हैं
इस पसीने में
तुम्हारे हिस्से का जो नमक है।
इस खून में तुम्हारे हिस्से की ऑक्सीजन के लिए
सड़कों पर लोग तुम्हारे लिए लड़ रहे हैं।

यह कविता प्रतीकात्मकता और प्रत्यक्षता दोनों से युक्त होकर पाठक को सीधे संबोधित करती है।

राजेश पाल की कविताओं का प्रमुख सरोकार जातिवाद के विरुद्ध संघर्ष है। वे वर्णव्यवस्था और ब्राह्मणवादी वर्चस्व पर तीखा प्रहार करते हैं। 'सभ्यता का अपमान' कविता में दलितों के साथ होने वाली अमानवीय घटनाओं का वर्णन करते हुए कवि न केवल समाज को

कठघरे में खड़ा करता है बल्कि उसकी मौन स्वीकृति को भी उजागर करता है:

एक इंसान दूसरे इंसान के साथ
कैसे कर सकता है ऐसी क्रूरता
कि वह दलित को
उसके जूते में उसका मूत पिलाएँ..

यह कविता केवल आक्रोश नहीं है, बल्कि सभ्यता के खोखलेपन का दस्तावेज भी है।

राजेश पाल सत्ता संरचनाओं और उसकी जातिगत जड़ों को उजागर करते हैं। उनकी कविता 'व्यवस्था में गाँव' में वे सामाजिक व्यवस्था को एक सुनियोजित साजिश के रूप में चिन्हित करते हैं:

हम बँट गये हैं
बँट कर घट गये हैं
व्यवस्था साजिश थी
साजिश को तोड़ दो
खुद को जोड़ दो

यह कविता प्रतिरोध के लिए एक वैचारिक रणनीति का प्रस्ताव भी है।

'अच्छे आंबेडकर' कविता में कवि राजेश पाल ब्राह्मणवादी सहानुभूति की आलोचना करते हुए उसे दलित संघर्ष के मुकाबले अपर्याप्त मानते हैं। कवि सहानुभूति नहीं, सक्रिय भागीदारी की मांग करता है:

इसलिए अच्छे आंबेडकर
तुम्हारी कोरी सहानुभूति नहीं
अधिकार के पक्ष में लड़ाई चाहिए
हमें अब अपना अधिकार चाहिए।

यह कविता सामाजिक न्याय के विमर्श में उत्प्रेरक की भूमिका निभाती है।

राजेश पाल की कविताओं में सामंती सोच का विरोध भी तीव्र रूप से प्रकट होता है। दिल्ली विश्वविद्यालय की एक घटना के माध्यम से वे सत्ता की चुप्पी के बावजूद प्रतिरोध की गूंज सुनने का साहस भरते हैं:

सुनो सामंतों! ध्यान से सुनो !!
तमाम सत्ता और
कलम की चुप्पी के बावजूद
तुम्हें प्रतिरोध की आहटें
सुनाई दे रही है...

यह एक सीधा चेतावनी-पत्र है जो व्यवस्था को चुनौती देता है।

राजेश पाल की कविता 'तुम्हारे सवाल छद्म हैं' आजादी और सामाजिक समानता के उस गहरे अंतर्विरोध को उजागर करती है, जिसे अक्सर मुख्य-धारा की राजनीतिक चर्चा में अनदेखा कर दिया जाता है। यह कविता उन सवालों पर तीखा प्रहार करती है, जो सतह पर तो समानता की बात करते हैं, लेकिन उनके पीछे की मंशा और व्यवस्था की जड़ें गहराई से सामंती और जातिवादी सोच में धँसी होती हैं।

तुम्हें नहीं हुआ सहन हमारा
आंखें मिलाकर बात करना
आजादी में भी नहीं मिली
आजादी हमें।

गुलामी की उस निरंतरता को दर्शाती हैं, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी समाज के एक बड़े हिस्से के जीवन में बनी रही। यहाँ कवि यह स्पष्ट करते हैं कि राजनीतिक आजादी प्राप्त होने के बावजूद सामाजिक स्तर पर जो असमानताएँ और भेदभाव थे, वे जस के तस कायम हैं। कविता में यह तीखा प्रश्न उठाया गया है

तुम ही पूछते हो
पिचहत्तर साल की
आजादी में भी
क्यों नहीं आए तुम बराबर?

यह प्रश्न केवल एक व्यंग्य नहीं, बल्कि उस मानसिकता की पोल खोलता है जो तथाकथित 'मुख्यधारा' में दलित, शोषित और वंचित वर्गों की अनुपस्थिति पर सवाल उठाती है, जबकि उसी व्यवस्था ने उन्हें वहाँ पहुँचने से रोके रखा।

राजेश पाल इस कविता में समाज की उस कठोर सच्चाई को रेखांकित करते हैं कि सामाजिक स्वतंत्रता के बिना कोई भी स्वतंत्रता अधूरी है।

सामाजिक आजादी के बिना
नहीं मिल सकती है
कोई भी आजादी

यह पंक्ति कविता का केंद्रीय कथ्य बन जाती है। वह यह रेखांकित करती है कि सामाजिक विषमता के रहते हुए लोकतंत्र और स्वतंत्रता केवल दिखावा बन कर रह जाते हैं। कविता का अंतिम हिस्सा–

सामंती लोग निरंतर कोशिश में हैं
हजारों साल पुराना यह पिंजरा
मजबूत बना रहे
कभी टूट ना पाए।

इस बात की चेतावनी है कि एक संगठित और सूक्ष्म स्तर पर काम कर रही शक्तियाँ आज भी सामाजिक जड़ताओं को बनाए रखने में लगी हुई हैं। उनका उद्देश्य उस 'पिंजरे' को टूटने से बचाना है, जिसमें पीढ़ियों से वंचित वर्गों को क़ैद कर रखा गया है।

'तुम्हारे सवाल छद्म हैं' केवल एक कविता नहीं, बल्कि एक सामाजिक दस्तावेज है–एक प्रतिरोध का स्वर है जो उन आवाजों की तरफ संकेत करता है जिन्हें दशकों से दबाया गया। यह कविता हमसे आत्ममंथन की माँग करती है: क्या हमने सच में सभी को आजादी दी है, या फिर हम अब भी कुछ लोगों

को पिंजरे में रखकर 'स्वतंत्रता' का जश्न मना रहे हैं? यह रचना हमारे सामने न केवल प्रश्न खड़े करती है, बल्कि हमें सामाजिक न्याय के संघर्ष में एक सक्रिय भागीदारी की ओर भी आमंत्रित करती है।

राजेश पाल की रचनाओं में केवल प्रतिरोध नहीं है, बल्कि पुनर्निर्माण की आकांक्षा भी है। वे सपनों, उम्मीदों और संघर्षों की बात करते हैं। 'हाँक भी क्रांति है' जैसी कविताओं में कवि पाठकों को निराशा में भी आशा की आवाज बुलंद करने को प्रेरित करता है:

हर काम कोशिश से होता है
विश्वास से जुड़ता है
मैं कहता हूँ
घोर निराशा में भी आवाज दो
लोग जरूर आएंगे...

यह कविता न केवल प्रेरणादायी है, बल्कि जनांदोलनों की नींव को मजबूत करने वाली भी है।

डॉ. राजेश पाल की कविताएँ समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ का जीवंत दस्तावेज हैं। वे केवल काव्य सौंदर्य के लिए नहीं लिखते, बल्कि सामाजिक बदलाव के लिए लिखते हैं। उनका साहित्य प्रतिरोध की संस्कृति को पोषित करता है, उत्पीड़ितों की आवाज को मंच देता है और सामाजिक क्रांति के लिए विचारों की मशाल जलाता है। वे हमें याद दिलाते हैं कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता और परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। डॉ. राजेश पाल का साहित्य इस युग का जरूरी हस्तक्षेप है।❑

पृष्ठ सं. 54 का शेष

अजय पंवार जी की शिकायत करने लगे–'ये जनरल कैटेगिरी के लोगों का पिछलग्गू है। देखों! कैसे? घुट-घुटकर बात कर रहा है।'

'अरे! ये तो विजय पंवार का छोटा भाई अजय पंवार है। ये तो जनरल से है। तुम्हें क्या कष्ट है। वो किसी से भी बात करे।'

अगले दिन कुछ लोग सैमिनार में नहीं गये। सीधे स्कूल गये। वहां जाकर अजय पंवार की सर्विस बुक ढूंढी, नहीं मिली। शायद अभी बनी नहीं है। फिर पर्सनल फाइल ढूंढी वह भी नहीं मिली। पता लगा कि ज्वाईनिंग वाले दिन ही फोटो स्टेट कराने के बहाने से ले गया था। आज तक नहीं लाया। लोग डिस्ट्रिक्ट पहुंच गये। यूनियन के लोगों के माध्यम से लिस्ट निकलवाई गई। कैटिगरी देखी तो अजय पंवार के नाम के आगे कैटिगिरी में एस. सी. ही लिखा था। यूनियन के नेता मेहताब सिंह बोलें–'यार तुम भी अजीब हो। मास्टर होकर ऐसी छोटी हरकत करते हो।'

लोगों ने कहा–'बात तो तुम ठीक कह रहे हो पर ये ओछी हरकतें हमने आप जैसे लोगों से ही सीखीं हैं।'

अब बारी थी अनुसूचित जाति के हितैषियों की। उन्होंने भी किसी संगठन के माध्यम से अजय पंवार की शिकायत अनूसूचित जाति एवं जनजाति आयोग में कर दी। सवर्ण जाति का व्यक्ति अनूसूचित जाति का हक मारकर बैठा है। विभाग की ओर से काफी टाल-मटौल और लीपा पोती की गई। शिकायत जायज थी फिर भी इंक्यवारी महीनों लटकी रही। कभी भी एक्चुअल रिपोर्ट नहीं लगाई गई। लोग कोर्ट चले गये। फिर वही बहाने बाजी की गई। संगठन के लोगों ने कोर्ट में इस बार पक्के सबूत पेश कर दिये। अजय पंवार का जाति प्रमाण-पत्र और उसके भाई विजय पंवार के सभी आवश्यक डाक्यूमेंट्स।

गवाही के रूप में माता-पिता को भी कोर्ट में पेश होना पड़ा। डाक्यूमेंट्स बता रहे थे कि दोनों सगे भाई हैं। दोनों शिक्षा विभाग में अध्यापक हैं। बड़ा भाई जनरल कैटेगिरी से और छोटा भाई ने सैड्यूल कास्ट कैटिगिरी से नौकरी पाई है। ये कैसे हो सकता है? बात बिगड़ती देख अजय पंवार के वकील ने उसकी माँ के कान में कुछ कहा।

फैसले का दिन था। कोर्ट खचाखच भरा था। व्हिटनैस बॉक्स में अजय पंवार की मां को बुलवाया गया।

माँ के निवेदन पर कोर्ट में गवाही के समय केवल वकील ही विद्यमान रहे। अजय पंवार की माँ ने अपने पति को भी आँख के इशारे से बाहर जाने को कहा।

माँ के सामने धर्म संकट था। सच कहे तो बेटे की नौकरी चली जायेगी और झूठ बोलती है तो बुढापे में इज्जत पर बट्टा। अंत में आदमी दिमाग से सोचता है और कई बार आर्थिक आधार पर फैसले लेता है।

जज के सम्मुख खड़ी होकर गर्दन नीची करके अजय पंवार की माँ बोली–'जी, अजय का बाप नट था!'

जो ऊसूलों के साथ थे और सही थे। वो सब के सब हार गये।❑

एक समाजिक चिंतक की अद्भुत काव्य रचना

आग लग जाने दो

मूल्य :
200/- रुपये

प्रकाशक :
इंडस पब्लिकेशन
ए-198, न्यु सीमापुरी, दिल्ली-110095

राजेन्द्र प्रसाद
(9268798084, 7042693244)

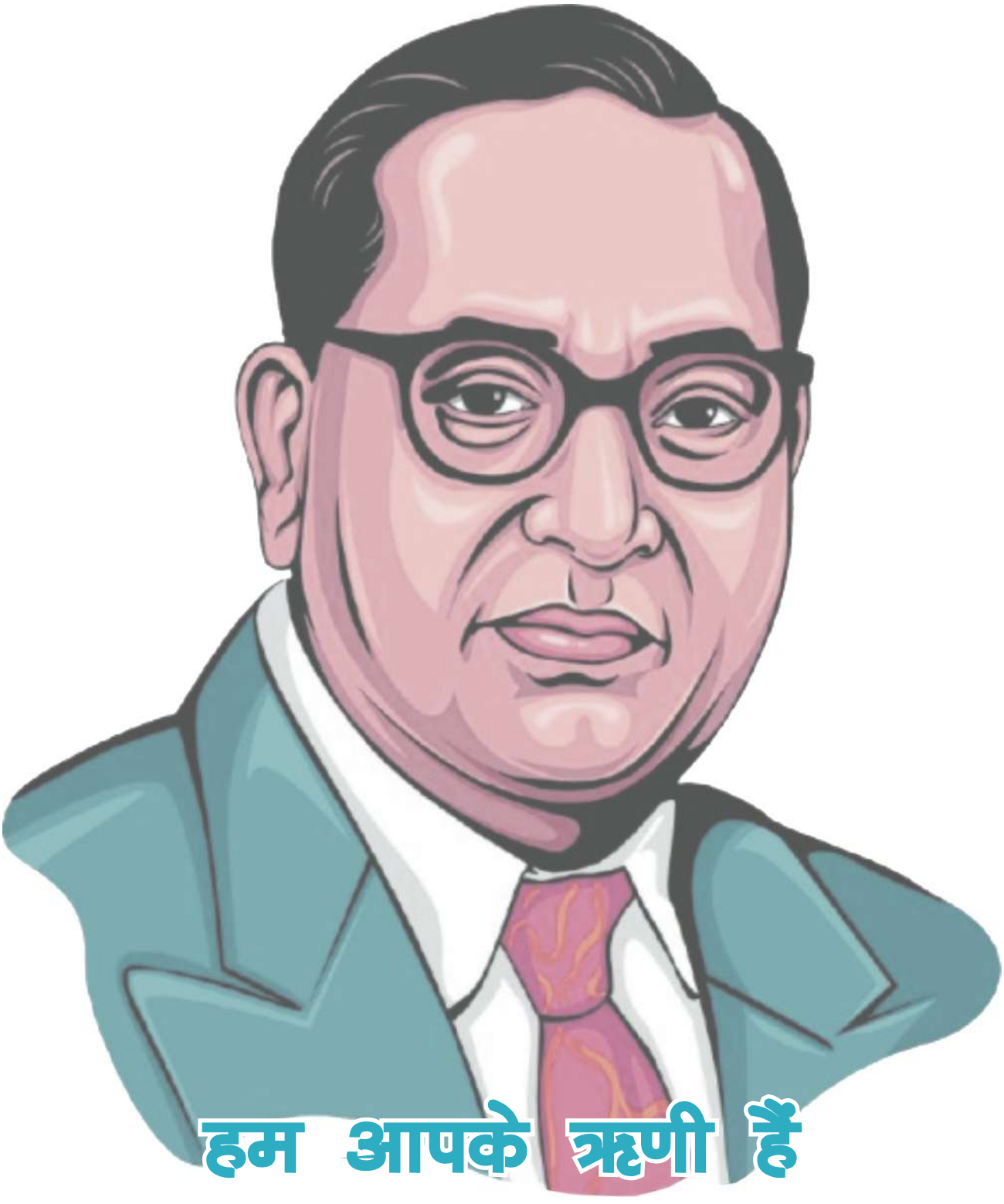

हम आपके ऋणी हैं